

**BRAHMAVART P.G. COLLEGE, MANDHANA
KANPUR NAGAR**

प्रश्नBANK

**FOR CSJMU UNIVERSITY'S
ODD SEMESTER EXAMINATION**

**M.A.III SEM (Hindi)
Paper-IVth (Elective)
साहित्य एवं सिनेमा
(A010910T)**

**60+SHORT ANSWER QUESTIONS
Brief and Intensive Notes**

**Dr. Amit Kumar Dubey
Department of Hindi, Brahmavart P.G. College, Kanpur**

UNIT-1: साहित्य की अवधारणा व स्वरूप

प्रश्न 1. साहित्य की अवधारणा क्या है?

उत्तर: साहित्य शब्द संस्कृत की 'सहित' धातु से बना है जिसका अर्थ है हित के साथ होना, साथ होना। अर्थात् जो सबके हित की बात करे वही साहित्य है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र से लेकर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने साहित्य को 'जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब' कहा है। साहित्य केवल कल्पना, भावुकता या मनोरंजन नहीं है, बल्कि सामाजिक यथार्थ की कलात्मक और भाषिक अभिव्यक्ति है। साहित्य भाषा के माध्यम से मानव के अनुभव, भाव, विचार, संघर्ष और स्वप्न को स्थायित्व प्रदान करता है। इसमें लोकमंगल की भावना अनिवार्य मानी गई है। साहित्य का स्वरूप लिखित होता है, पर उसकी जड़ें मौखिक लोक-परंपरा में होती हैं। यह देश और काल से बंधा होकर भी सार्वभौमिक होता है। प्रेमचंद साहित्य को जीवन की आलोचना मानते हैं। डॉ. नामवर सिंह कहते हैं साहित्य समाज के अंतर्विरोधों को पहचानता है। इसलिए साहित्य केवल किताब नहीं, बल्कि समाज का दर्पण, दीपक और स्वप्न तीनों हैं जो अतीत को दर्ज करता है और भविष्य को दिशा देता है।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः साहित्य वह मानवीय सृजन है जो हित और सत्य को साथ लेकर चलता है। यह समाज को केवल दिखाता नहीं, बल्कि उसे बदलने की चेतना भी पैदा करता है। यही कारण है कि हर युग में साहित्य प्रासंगिक और जीवंत बना रहता है।

प्रश्न 2. सिनेमा की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।

उत्तर: सिनेमा शब्द फ्रेंच शब्द Cinematographe से बना है जिसका अर्थ है गतिशील चित्रों का लेखन। यह 19वीं शताब्दी की वैज्ञानिक खोज और 20वीं सदी की सबसे सशक्त, लोकप्रिय और प्रभावशाली कला है। सिनेमा केवल मनोरंजन का साधन नहीं है, बल्कि एक साथ तीन रूपों में मौजूद है - एक उद्योग के रूप में, एक कला के रूप में और एक जनसंचार माध्यम के रूप में। यह दृश्य-श्रव्य माध्यम है जिसमें प्रकाश, ध्वनि, अभिनय, संगीत, संपादन, कैमरा और पटकथा का अद्भुत समन्वय होता है। साहित्य जहाँ शब्दों के माध्यम से मन में बिंब बनाता है, वहीं सिनेमा कैमरे से सीधे आंखों के सामने बिंब प्रस्तुत कर देता है। यह एक सामूहिक कला है। साहित्य में एक लेखक अकेले सृजन करता है, पर सिनेमा में लेखक, निर्देशक, कैमरामैन, अभिनेता, संगीतकार, संपादक सैकड़ों लोगों की सामूहिक रचनात्मकता लगती है। आज सिनेमा जन-जन की भाषा बन चुका है क्योंकि निरक्षर व्यक्ति भी इसे देख और समझ सकता है।

निष्कर्ष: अतः सिनेमा आधुनिक युग की वह तकनीकी और सामूहिक कला है जो मनोरंजन के साथ-साथ जन-चेतना का निर्माण भी करती है। यह केवल पर्दे पर चलती तस्वीर नहीं, बल्कि करोड़ों लोगों के सपनों, भावनाओं और संघर्षों का जीवंत दस्तावेज है।

प्रश्न 3. साहित्य और सिनेमा का सैद्धान्तिक संबंध क्या है?

उत्तर: साहित्य और सिनेमा दोनों ही मूलतः कहानी कहने की कला हैं और दोनों का सैद्धान्तिक आधार एक ही है। डॉ. बच्चन सिंह और नामवर सिंह के अनुसार दोनों का अंतिम लक्ष्य मानव जीवन, समाज और उसके द्वंद्वों की व्याख्या करना है। साहित्य सिनेमा को कथा का भंडार, चरित्रों की गहराई, सार्थक संवाद, द्वंद्व और वैचारिक आधार देता है, जबकि सिनेमा साहित्य को दृश्यता, व्यापक दर्शक वर्ग, लोकप्रियता, आर्थिक आधार और नई जीवन देता है। दोनों में अरस्तू का 'अनुकरण सिद्धांत' काम करता है, दोनों जीवन का अनुकरण करते हैं। अंतर केवल माध्यम का है। साहित्य एकाकी सृजन है, सिनेमा सामूहिक सृजन है। साहित्य में पाठक अपनी कल्पना से बिंब बनाता है, सिनेमा में निर्देशक बना-बनाया बिंब दर्शक को देता है। इसे 'अंतर्पाठात्मकता' कहा गया है, जहाँ दो कलाएं एक-दूसरे को काटती नहीं बल्कि समृद्ध करती हैं। इसलिए साहित्यिक कृति पर फिल्म बनना साहित्य का अपमान नहीं, बल्कि उसका विस्तार और पुनर्सृजन है।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः साहित्य और सिनेमा दो अलग माध्यम होते हुए भी एक ही लक्ष्य के दो रास्ते हैं। एक शब्द से संवेदना जगाता है, दूसरा दृश्य से। दोनों एक-दूसरे के विरोधी नहीं, बल्कि पूरक हैं और साथ-साथ विकसित होकर समाज को प्रभावित करते हैं।

प्रश्न 4. सिनेमा में उपन्यास का उपयोग कैसे होता है?

उत्तर: उपन्यास सिनेमा की सबसे प्रिय और सबसे अधिक उपयोग की जाने वाली साहित्यिक विधा है, क्योंकि उपन्यास में एक फिल्म के लिए जरूरी सभी तत्व मौजूद होते हैं - विस्तृत कथा, चरित्रों का क्रमिक विकास, सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक पृष्ठभूमि, द्वंद्व और नायक-खलनायक का संघर्ष। प्रेमचंद के 'गोदान', 'ग़बन' से लेकर रेणु के 'मैला आँचल', श्रीलाल शुक्ल के 'राग दरबारी', भगवतीचरण वर्मा के 'चित्रलेखा' तक पर फिल्में बनी हैं और सफल रही हैं। उपन्यास में समय का विस्तार होता है, लेखक 20 साल की कहानी 300 पन्नों में कह सकता है, पर फिल्म को उसे 3 घंटे में समेटना पड़ता है। इसलिए निर्देशक को उपन्यास का शब्दशः अनुवाद नहीं बल्कि सर्जनात्मक रूपांतरण करना पड़ता है। राजकमल प्रकाशन के अनुसार उपन्यास फिल्म को साहित्यिक गहराई, प्रामाणिकता और विश्वसनीयता देता है और फिल्म उपन्यास को उन करोड़ों लोगों तक पहुँचाती है जिन्होंने कभी किताब नहीं पढ़ी। समस्या तब आती है जब निर्देशक उपन्यास की मूल आत्मा को ही बदल देता है।

निष्कर्ष: इस प्रकार उपन्यास और सिनेमा का संबंध बहुत गहरा और पुराना है। सफल रूपांतरण वही माना जाता है जो उपन्यास की आत्मा को बनाए रखते हुए उसे सिनेमाई भाषा में कहे। यही कारण है कि आज भी OTT तक में उपन्यास कहानियों का सबसे बड़ा स्रोत है।

प्रश्न 5. कहानी और सिनेमा का संबंध स्पष्ट करें

उत्तर: कहानी आकार में छोटी, एक ही घटना, एक ही चरित्र और एक ही द्वंद्व पर केंद्रित होती है, इसलिए वह उपन्यास की तुलना में फिल्म के लिए ज्यादा उपयुक्त मानी जाती है। फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी 'मारे गये गुलफाम' पर 'तीसरी कसम', प्रेमचंद की 'शतरंज के खिलाड़ी' पर सत्यजित राय की फिल्म, 'उसने कहा था' पर फिल्म इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं। कहानी में जो कसावट, नाटकीय एकता, भावनात्मक तीव्रता और चरम होता है, वह फिल्म की सीन-संरचना से बिल्कुल मिलता-जुलता है। कहानी की 'नाटकीय एकता' ही फिल्म के 'सीन' का आधार बनती है। कहानी में लेखक जो बात संकेत, प्रतीक और व्यंजना में कहता है, फिल्म उसे दृश्य, प्रकाश, संगीत और अभिनय में दिखाती है। कहानी पाठक की कल्पना के लिए बहुत कुछ छोड़ देती है, जबकि फिल्म उस कल्पना को पूरा करके पर्दे पर साकार कर देती है। इसलिए कहानी का फिल्मांकन उपन्यास की तुलना में आसान, सस्ता और अधिक कलात्मक होता है।

निष्कर्ष: अतः कहानी और सिनेमा का रिश्ता सबसे स्वाभाविक और सफल है। कहानी अपनी संक्षिप्तता और तीव्रता के कारण सिनेमा को एक तैयार और कसा हुआ ढांचा देती है, जिसे निर्देशक आसानी से दृश्यों में बदल सकता है।

प्रश्न 6. जीवनी पर आधारित सिनेमा।

उत्तर: जीवनी किसी महान, प्रसिद्ध या ऐतिहासिक व्यक्ति के जीवन का प्रामाणिक, तथ्यपरक और क्रमबद्ध वर्णन है। इस पर बनी फिल्म को आज की भाषा में 'बायोपिक' कहा जाता है। जैसे - रिचर्ड एटनबरो की 'गांधी', 'भाग मिलखा भाग', 'मांझी', 'पान सिंह तोमर', 'सैम बहादुर'। जीवनी पर फिल्म बनाना सबसे कठिन काम है क्योंकि इसमें इतिहास और कल्पना का संतुलन साधना पड़ता है। साहित्यिक जीवनी तथ्यों, दस्तावेजों और तिथियों पर चलती है, जबकि सिनेमाई जीवनी उन्हीं तथ्यों को नाटकीय, भावनात्मक और दृश्यात्मक बनाती है ताकि दर्शक बंधा रहे। विद्वान विनय कुमार पाठक के अनुसार बायोपिक में दर्शक सच देखना चाहता है, इसलिए निर्देशक को गहन शोध करना पड़ता है। इसमें व्यक्ति को देवता बनाकर महिमा मंडित नहीं, बल्कि मानवीय कमजोरियों और ताकतों के साथ दिखाना चाहिए। यही इसकी सफलता और विश्वसनीयता का मंत्र है। आज बायोपिक सबसे लोकप्रिय शैली बन गई है।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः बायोपिक साहित्य और सिनेमा के बीच इतिहास का पुल है। यह महान व्यक्ति के जीवन को किताबों की अलमारी से निकालकर जन-जन तक पहुँचाती है और नई पीढ़ी को प्रेरणा देती है।

प्रश्न 7. नाटक और सिनेमा में क्या अंतर है?

उत्तर: नाटक और सिनेमा दोनों में अभिनय, संवाद, प्रकाश-व्यवस्था, वेशभूषा और संगीत होता है, इसलिए दोनों को बहुत करीब माना जाता है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के पाँच तत्त्व - अभिनय, वेश, रंगमंच, संगीत और वाणी - सिनेमा में भी ज्यों के त्यों मौजूद हैं। पर दोनों में मौलिक अंतर है। नाटक मंच की कला है, सिनेमा पर्दे की कला है। नाटक में दर्शक और

अभिनेता आमने-सामने होते हैं, जीवंत संवाद होता है, सिनेमा में कैमरा बीच में होता है और अभिनय पहले रिकॉर्ड होता है। नाटक में समय और स्थान की एकता का पालन जरूरी है, एक ही मंच पर पूरी कहानी, जबकि सिनेमा में फ्लैशबैक, फ्लैश फॉरवर्ड, देश-विदेश की लोकेशन आसानी से दिखाई जा सकती है। साहित्यिक नाटक शब्द-प्रधान होता है, संवाद ही उसका प्राण है, जबकि सिनेमा दृश्य-प्रधान होता है। मोहन राकेश के 'आषाढ का एक दिन' पर फिल्म बनी पर वह मंच जैसी प्रभावशाली नहीं लगी, क्योंकि दोनों की भाषा अलग है।

निष्कर्ष: इस प्रकार नाटक और सिनेमा समान तत्वों वाली दो अलग-अलग कलाएं हैं। नाटक शब्द और अभिनेता की कला है, जबकि सिनेमा कैमरा और संपादन की कला है। एक की शक्ति संवाद में है, दूसरे की शक्ति दृश्य में।

प्रश्न 8. आत्मकथा और सिनेमा।

उत्तर: आत्मकथा लेखक द्वारा स्वयं लिखी गई अपनी जीवन-कथा है, जिसमें 'स्व' की ईमानदारी, आत्मस्वीकृति और आत्मालोचना होती है। जैसे - हरिवंशराय बच्चन की 'क्या भूलूं क्या याद करूं', मंटो, अमृता प्रीतम की आत्मकथाओं पर फिल्में और वेब सीरीज बनी हैं। आत्मकथा में लेखक खुद ही नायक भी है और लेखक भी, इसलिए उसे पर्दे पर दिखाना बहुत कठिन है। साहित्य में लेखक मन के भीतर की बातें आसानी से लिख देता है, पर सिनेमा में उसे दिखाने के लिए वॉयस-ओवर, फ्लैशबैक, आत्म-संवाद जैसी तकनीकों का सहारा लेना पड़ता है। आत्मकथा फिल्म में दर्शक को लेखक के अंतर्मन, उसकी मानसिक उथल-पुथल में ले जाती है। इसमें तथ्य और भाव दोनों का मेल होता है। आत्मकथा की फिल्म में सबसे बड़ा खतरा आत्म-प्रशंसा का होता है, इसलिए निर्देशक को तटस्थ रहना पड़ता है। सफल आत्मकथात्मक फिल्म वही है जो व्यक्ति के बहाने पूरे युग को दिखा दे।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः आत्मकथा और सिनेमा का संगम व्यक्ति के सत्य को समाज के सत्य से जोड़ता है। यह केवल एक व्यक्ति की कहानी नहीं, बल्कि उसके समय, समाज और संघर्ष का जीवंत दस्तावेज बन जाती है।

प्रश्न 9. संस्मरण और सिनेमा।

उत्तर: संस्मरण स्मृति पर आधारित रचना है। यह जीवनी और आत्मकथा दोनों से अलग विधा है। जीवनी में किसी व्यक्ति का पूरा जीवन होता है, आत्मकथा में अपना जीवन, जबकि संस्मरण में लेखक अपने संपर्क में आए किसी व्यक्ति, घटना या स्थान की स्मृति को रचता है। जैसे - महादेवी वर्मा के 'स्मृति की रेखाएं', 'अतीत के चलचित्र', रामवृक्ष बेनीपुरी के संस्मरण। सिनेमा में संस्मरण शैली की फिल्में कम बनती हैं, पर सत्यजित राय की 'पाथेर पांचाली', 'अपू ट्रिलॉजी' जैसी फिल्में संस्मरणात्मक ही हैं। इसमें नॉस्टेलजिया यानी अतीत की मीठी-दुखी याद मुख्य भाव होता है। साहित्य में संस्मरण शब्दों, बिंबों और विवरणों से यादें जगाता है, जबकि सिनेमा धीमी गति, धुंधले दृश्यों, सेपिया टोन और संगीत से अतीत का वातावरण बनाता है। कैमरा

धीरे-धीरे अतीत में ले जाता है। यह विधा दर्शक को भावुक करती है क्योंकि हर दर्शक का अपना अतीत होता है।

निष्कर्ष: अतः संस्मरण साहित्य और सिनेमा दोनों में यादों की कला है। यह बड़े इतिहास की जगह छोटे, निजी और भावनात्मक इतिहास को महत्व देती है और दर्शक-पाठक को अपने ही अतीत से जोड़ देती है।

प्रश्न 10. साहित्यिक गीत और सिनेमाई गीत में अंतर।

उत्तर: साहित्यिक गीत कविता का गेय रूप है, जैसे निराला, महादेवी वर्मा, प्रसाद के गीत। यह मूलतः पाठ और आत्मानुभूति के लिए लिखा जाता है, इसमें लय, छंद, अलंकार, बिंब शास्त्रीय और परिष्कृत होते हैं। कवि अपनी आंतरिक भावना को व्यक्त करता है। इसके विपरीत सिनेमाई गीत फिल्म की कथा को आगे बढ़ाने, चरित्र के मनोभाव को बताने, दर्शक का मनोरंजन करने और फिल्म की मार्केटिंग के लिए लिखा जाता है। साहित्यिक गीत में शब्द प्रधान होता है, सिनेमाई गीत में धुन प्रधान होती है। फिल्म में पहले धुन बनती है, फिर उस पर शब्द बैठाए जाते हैं। शैलेन्द्र, साहिर लुधियानवी, गुलजार, जावेद अख्तर ने साहित्यिक गीत को सिनेमाई बनाया। साहित्यिक गीत में कवि स्वतंत्र है, सिनेमाई गीत में गीतकार निर्देशक, कहानी, स्थिति और संगीतकार की मांग से बंधा होता है। सिनेमाई गीत साहित्यिक गीत का सबसे लोकप्रिय और जन-सुलभ रूप है।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः दोनों गीतों में भाव ही सेतु है। साहित्यिक गीत आत्मा की गहराई में उतरता है, जबकि सिनेमाई गीत उसी भाव को करोड़ों लोगों के होंठों तक पहुँचा देता है। एक की शक्ति एकांत में है, दूसरे की शक्ति समूह में।

प्रश्न 11. साहित्य सिनेमा को क्या देता है?

उत्तर: साहित्य सिनेमा को तीन अमूल्य चीजें देता है जो सिनेमा खुद नहीं बना सकता। पहली - कथा का अक्षय भंडार। दुनिया की 90% फिल्में किसी न किसी कहानी, उपन्यास, नाटक, जीवनी पर आधारित हैं। प्रेमचंद, रेणु, शरतचंद्र से लेकर आज के युवा लेखकों तक, साहित्य सिनेमा को कभी न खत्म होने वाली कहानियां देता है। दूसरी - भाषा और संवाद। प्रेमचंद, रेणु की ठेठ ग्रामीण भाषा, मंटो की तीखी भाषा फिल्म में जीवंतता, प्रामाणिकता और मिट्टी की गंध लाती है। तीसरी - वैचारिक गहराई। साहित्य सामाजिक समस्याओं - जाति, वर्ग, स्त्री-शोषण, किसान-समस्या - को गहराई से उठाता है जो सिनेमा को केवल मनोरंजन से ऊपर उठाकर गंभीर और सोचने वाली कला बनाता है। डॉ. नामवर सिंह कहते हैं सिनेमा ने साहित्य को नया पाठक नहीं, बल्कि नया दर्शक दिया है। अगर साहित्य न होता तो सिनेमा केवल तकनीक और ग्लैमर का खेल बनकर रह जाता।

निष्कर्ष: अतः साहित्य सिनेमा की आत्मा है। वह उसे कहानी, भाषा और विचार देता है। साहित्य के बिना सिनेमा दिशाहीन हो जाएगा, जबकि साहित्य के साथ वह समाज का सशक्त दस्तावेज बन जाता है।

प्रश्न 12. सिनेमा साहित्य को क्या देता है?

उत्तर: अगर साहित्य सिनेमा को आत्मा देता है तो सिनेमा साहित्य को शरीर, विस्तार और लोकप्रियता देता है। पहली चीज - व्यापक दर्शक। बहुत से लोगों ने प्रेमचंद का 'गोदान' नहीं पढ़ा, पर 'गोदान' फिल्म देखी है, 'तीसरी कसम' कहानी से ज्यादा फिल्म के रूप में जानी जाती है। सिनेमा साहित्यिक कृति को दृश्य बिंब देकर अमर और जन-सुलभ बना देता है। दूसरी - आर्थिक लाभ। फिल्म बनने पर लेखक या उसके परिवार को कॉपीराइट, रॉयल्टी के रूप में बड़ा आर्थिक लाभ मिलता है जिससे साहित्यिक सृजन को सहारा मिलता है। तीसरी - नया बाजार और नया पाठक। आज OTT प्लेटफॉर्म पर 'मिर्जापुर', 'पंचायत', 'गुल्लक', 'स्कैम' जैसी साहित्यिक पृष्ठभूमि वाली वेब सीरीज ने साहित्य को नया, युवा और शहरी बाजार दिया है। सिनेमा साहित्य को पुरानी लाइब्रेरी की अलमारी से निकालकर मोबाइल, टीवी और पर्दे पर जन-जन तक ले जाता है और उसे नया जीवन देता है।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः सिनेमा साहित्य का सबसे बड़ा प्रचारक है। वह साहित्य को किताबों से निकालकर जन-संस्कृति बनाता है। दोनों का यह लेन-देन ही दोनों कलाओं को जीवित और प्रासंगिक बनाए रखता है।

प्रश्न 13. साहित्यिक विधाओं का सिनेमा में रूपांतरण की समस्या।

उत्तर: साहित्य को सिनेमा में बदलना सबसे कठिन रचनात्मक चुनौती है और इसकी तीन बड़ी समस्याएं हैं। पहली और सबसे बड़ी समस्या है शब्द को दृश्य में बदलना। साहित्य में लेखक एक पंक्ति में लिख देता है - 'वह बहुत उदास थी', पर फिल्म में इस उदासी को दिखाने के लिए अभिनय, क्लोज-अप, प्रकाश, संगीत, पृष्ठभूमि सबका सहारा लेना पड़ता है। दूसरी समस्या है समय और विस्तार की। 300 पन्ने का उपन्यास 3 घंटे में कैसे समेटा जाए? क्या छोड़ा जाए, क्या रखा जाए, यह निर्णय बहुत कठिन होता है। तीसरी और सबसे भावनात्मक समस्या है पाठक की कल्पना। हर पाठक ने अपने मन में पात्र की एक छवि बनाई होती है, जैसे हर पाठक के मन का हीरामन अलग है। फिल्म उस निजी छवि को तोड़कर एक निश्चित छवि थोप देती है, इसलिए अक्सर पाठक कहता है - किताब ज्यादा अच्छी थी, फिल्म में मजा नहीं आया। इसलिए रूपांतरण को लेकर अक्सर लेखक और पाठक दोनों में असंतोष रहता है।

निष्कर्ष: अतः रूपांतरण अनुवाद नहीं, बल्कि पुनर्सृजन है। सफल रूपांतरण वही है जो साहित्य की मूल आत्मा और भाव को बनाए रखे, भले ही कुछ घटनाएं बदलनी पड़ें। यही संतुलन रूपांतरण की सबसे बड़ी कला है।

प्रश्न 14. क्या सिनेमा स्वतंत्र विधा है?

उत्तर: हाँ, आज यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो चुका है कि सिनेमा एक स्वतंत्र और स्वायत्त विधा है, यह केवल साहित्य या नाटक की अनुकृति नहीं है। पहले शुरुआती दौर में इसे साहित्य का पिछलग्गू कहा जाता था, पर अब नहीं। सिनेमा की अपनी स्वतंत्र भाषा, व्याकरण और सौंदर्यशास्त्र विकसित हो चुका है - जैसे शॉट, सीन, सीक्वेंस, मोंटाज, कैमरा मूवमेंट, लाइटिंग, एडिटिंग। साहित्य शब्दों से अर्थ बनाता है, सिनेमा दृश्यों से। साहित्य पढ़ा जाता है, सिनेमा देखा और सुना जाता है। साहित्य का प्रभाव मस्तिष्क पर होता है, सिनेमा का प्रभाव आंख, कान और हृदय पर एक साथ होता है। इसलिए सिनेमा को 'सातवीं कला' कहा गया है जिसमें पहली छह कलाओं - वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत, काव्य और नृत्य - का समन्वय और समावेश है। यह किसी पर निर्भर नहीं, बल्कि अपने आप में पूर्ण कला है जो साहित्य से सामग्री लेती है, पर उसे अपनी भाषा में कहती है।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः सिनेमा आज किसी का सहारा नहीं, बल्कि अपने पैरों पर खड़ी स्वतंत्र कला है। वह साहित्य से प्रेरणा लेती है, पर उसकी नकल नहीं करती, बल्कि अपनी नई और मौलिक सिनेमाई भाषा में बात करती है।

प्रश्न 15. साहित्य और सिनेमा का भविष्य।

उत्तर: साहित्य और सिनेमा का भविष्य अलग-अलग नहीं, बल्कि अंतर्संबंध और सहयोग में है। OTT प्लेटफॉर्म - Netflix, Amazon, Hotstar - ने साहित्य और सिनेमा के बीच की सारी दीवारें और दूरियां खत्म कर दी हैं। आज हर बड़ी और सफल वेब सीरीज किसी न किसी कहानी, उपन्यास या सच्ची घटना पर आधारित है। जैसे 'पाताल लोक', 'दिल्ली क्राइम', 'स्कैम 1992'। पहले फिल्म 3 घंटे की सीमा में बंधी थी, अब 8-10 एपिसोड की सीरीज में उपन्यास जैसा पूरा विस्तार संभव है। अब 'डिजिटल साहित्य' और 'डिजिटल सिनेमा' का युग है। साहित्य को सिनेमा से नया, युवा और वैश्विक दर्शक मिल रहा है और सिनेमा को साहित्य से कभी न खत्म होने वाली मौलिक कहानियां मिल रही हैं। दोनों एक-दूसरे के प्रतिस्पर्धी नहीं, बल्कि पूरक बनकर रहेंगे और साथ-साथ विकसित होंगे। तकनीक बदलेगी, पर कहानी की जरूरत हमेशा रहेगी।

निष्कर्ष: अतः भविष्य में साहित्य और सिनेमा का रिश्ता और भी गहरा होगा। कहानी साहित्य देगा, तकनीक सिनेमा देगा और दोनों मिलकर डिजिटल युग के दर्शक-पाठक के लिए नया और समृद्ध अनुभव रचेंगे।

UNIT-2: साहित्य एवं सिनेमा की रचना प्रक्रिया

प्रश्न 16. शब्द-वाक्य-अनुच्छेद और शॉट-सीन-सीक्वेंस में समानता।

उत्तर: साहित्य और सिनेमा की रचना प्रक्रिया में अद्भुत समानता है, केवल इकाई का नाम अलग है। साहित्य की सबसे छोटी, अविभाज्य इकाई शब्द है, ठीक वैसे ही सिनेमा की सबसे छोटी इकाई शॉट है। जैसे कई शब्द मिलकर वाक्य बनाते हैं जो एक पूरा विचार देता है, वैसे ही कई शॉट्स मिलकर सीन बनाते हैं जो एक पूरी घटना देता है। जैसे कई वाक्य मिलकर अनुच्छेद बनाते हैं जो एक भाव या प्रसंग को पूरा करता है, वैसे ही कई सीन मिलकर सीक्वेंस बनाते हैं जो फिल्म के एक बड़े अध्याय को पूरा करता है। साहित्य में लेखक का मुख्य काम शब्दों का चयन और संयोजन है - कौन सा शब्द कहाँ रखना है। सिनेमा में निर्देशक और संपादक का काम शॉट्स का चयन और संयोजन है - लॉन्ग शॉट, मिड शॉट, क्लोज-अप कहाँ रखना है। दोनों की प्रक्रिया चयन, क्रम और लय की है। फर्क केवल इतना है कि शब्द अमूर्त और प्रतीकात्मक है, जबकि शॉट मूर्त और दृश्यात्मक है। पर दोनों का अंतिम लक्ष्य अर्थ-निर्माण और भाव-संप्रेषण ही है।

निष्कर्ष: अतः कहा जा सकता है कि साहित्य शब्दों से बनता है और सिनेमा शॉट्स से, पर दोनों की वास्तुकला एक जैसी है। एक में वाक्य से अर्थ बनता है, दूसरे में सीन से। यही समानता दोनों को कहानी कहने की कला बनाती है।

प्रश्न 17. कथा और कथोपन में अंतर।

उत्तर: कथा और कथोपन साहित्य और सिनेमा दोनों के सबसे महत्वपूर्ण तत्व हैं और दोनों में अंतर समझना बहुत जरूरी है। कथा का अर्थ है - कहानी में क्या घटा, घटनाओं का कालक्रम, अर्थात् What is told. जैसे 'तीसरी कसम' की कथा है - एक भोले गाड़ीवाले हीरामन और नौटंकी की नर्तकी हीराबाई के बीच अधूरा प्रेम। वहीं कथोपन का अर्थ है - वह कहानी कैसे कही गई, किसने कही, किस क्रम में कही, किस दृष्टिकोण से कही, अर्थात् How it is told. 'तीसरी कसम' का कथोपन है - हीरामन द्वारा अपने मित्रों को फ्लैशबैक में, गाड़ी हांकते हुए, लोकगीतों के माध्यम से अपनी याद सुनाना। साहित्य में इसे 'नैरेटिव टेक्निक' और सिनेमा में 'नैरेटिव स्टाइल' कहते हैं। कथा एक हो सकती है पर उसके कथोपन कई हो सकते हैं। वही प्रेम कहानी प्रेमचंद अलग तरह से कहते, रेणु अलग तरह से, और बासु भट्टाचार्य फिल्म में अलग तरह से कहते हैं। साहित्य में कथोपन लेखक की भाषा से तय होता है, सिनेमा में कथोपन कैमरे की आँख, एडिटिंग और संगीत से तय होता है।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः कथा शरीर है और कथोपन उसकी आत्मा और शैली है। कथा बताती है कि क्या हुआ, जबकि कथोपन तय करता है कि दर्शक-पाठक उस घटना को कैसे महसूस करेगा। सफल रचना वही है जिसका कथोपन प्रभावशाली हो।

प्रश्न 18. पटकथा क्या है? साहित्य और सिनेमा के बीच पुल कैसे है?

उत्तर: पटकथा फिल्म का लिखित ब्लू-प्रिंट, नक्शा और आधार है। जैसे मकान बनाने से पहले इंजीनियर नक्शा बनाता है, वैसे ही फिल्म बनाने से पहले पटकथा लेखक पटकथा बनाता है।

साहित्य में जो कथानक है, सिनेमा में वही पटकथा है। पटकथा में तीन अनिवार्य चीजें होती हैं - दृश्य का विवरण, पात्रों का कार्य-व्यापार और उनके संवाद। पटकथा साहित्य और सिनेमा के बीच का पुल है। यह न तो पूरी तरह साहित्य है क्योंकि इसमें साहित्य जैसी अलंकृत भाषा नहीं, बल्कि तकनीकी निर्देश होते हैं, और न ही यह पूरी तरह तकनीक है क्योंकि इसमें कहानी, भाव और चरित्र साहित्य जैसे ही होते हैं। अच्छी पटकथा में दृश्यता का गुण होता है, उसे पढ़ते ही आंखों के सामने दृश्य चलने लगते हैं। 'तीसरी कसम' की पटकथा प्रसिद्ध साहित्यकार नबेंदु घोष ने लिखी थी, इसलिए वह साहित्यिक संवेदना होते हुए भी पूरी तरह सिनेमाई है। बिना अच्छी पटकथा के अच्छी फिल्म नहीं बन सकती, चाहे कितने भी बड़े स्टार क्यों न हों।

निष्कर्ष: अतः पटकथा साहित्य की कहानी को सिनेमा की भाषा में बदलने वाला सेतु है। यह लेखक की कल्पना को निर्देशक के कैमरे तक पहुँचाती है। यही कारण है कि पटकथा को फिल्म की रीढ़ कहा जाता है।

प्रश्न 19. संवाद का साहित्य और सिनेमा में अंतर।

उत्तर: साहित्यिक संवाद और सिनेमाई संवाद दोनों का लक्ष्य चरित्र और कहानी को आगे बढ़ाना है, पर दोनों की प्रकृति में बड़ा अंतर है। साहित्यिक संवाद पात्र के चरित्र, उसकी शिक्षा, वर्ग और लेखक के विचार दोनों को एक साथ दिखा सकता है। वह लंबा, अलंकृत, दार्शनिक और विवरणात्मक हो सकता है। जैसे प्रेमचंद के उपन्यासों में पात्र लंबे-लंबे संवाद बोलते हैं। पर सिनेमाई संवाद छोटा, चुस्त, बोलचाल की भाषा में, दृश्य के अनुकूल और अभिनय योग्य होना चाहिए। फिल्म में लंबे संवाद दर्शक को उबा देते हैं। फिल्म में संवाद कम, एक्शन और भाव ज्यादा होना चाहिए। प्रसिद्ध निर्देशक राजकपूर कहते थे - फिल्म में संवाद तब बोलो जब बिना बोले काम बिल्कुल न चले। साहित्य में संवाद पढ़ा जाता है, सिनेमा में सुना और देखा जाता है, इसलिए उसमें लय और बोलने की सहजता जरूरी है। अच्छा सिनेमाई संवाद यादगार और लोकप्रिय बन जाता है, जैसे 'तीसरी कसम' का - 'चलत मुसाफिर मोह लियो रे' या 'दीवार' का 'मेरे पास माँ है'।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः साहित्यिक संवाद विचार-प्रधान होता है जबकि सिनेमाई संवाद कार्य-प्रधान होता है। एक का लक्ष्य समझाना है, दूसरे का लक्ष्य महसूस कराना है। यही अंतर दोनों माध्यमों की अलग-अलग पहचान बनाता है।

प्रश्न 20. काव्य और सिनेमाई गीत में रचना प्रक्रिया का अंतर।

उत्तर: काव्य और सिनेमाई गीत दोनों में भाव, लय और शब्द होते हैं, पर दोनों की रचना प्रक्रिया बिल्कुल विपरीत है। कवि काव्य की रचना एकांत में, अपनी आत्मानुभूति, पीड़ा या आनंद से प्रेरित होकर स्वांतः सुखाय करता है। उसे किसी का आदेश नहीं होता, छंद, अलंकार,

बिंब सब उसकी अपनी मर्जी और प्रतिभा से आते हैं। जैसे निराला ने 'सरोज स्मृति' अपने दुख से लिखी। इसके विपरीत सिनेमाई गीतकार पर-आधारित रचना करता है। उसे निर्देशक की मांग, कहानी की स्थिति, पात्र की मनोदशा और सबसे बड़ी बात संगीतकार की बनी-बनाई धुन को देखकर गीत लिखना पड़ता है। फिल्म में पहले धुन बनती है, फिर उस पर शब्द बैठाए जाते हैं। शैलेन्द्र ने 'सजन रे झूठ मत बोलो' फिल्म की स्थिति देखकर लिखा। कविता में कवि स्वतंत्र है, गीत में गीतकार बंधा हुआ है - उसे दर्शक की पसंद, सेंसर और समय-सीमा का भी ध्यान रखना पड़ता है। एक की प्रेरणा भीतर से आती है, दूसरे की बाहर से।

निष्कर्ष: अतः काव्य आत्मा की स्वतंत्र उड़ान है, जबकि सिनेमाई गीत कथा और धुन के अनुशासन में बंधी हुई उड़ान है। दोनों की प्रक्रिया अलग है, पर दोनों का लक्ष्य हृदय को छूना ही है।

प्रश्न 21. नाटक और सिनेमा की रचना प्रक्रिया में अंतर।

उत्तर: नाटक और सिनेमा की रचना प्रक्रिया में माध्यम का बड़ा अंतर है। नाटककार नाटक लिखते समय हमेशा मंच को ध्यान में रखता है। उसे पता है कि कहानी एक ही मंच पर, कुछ घंटों में, प्रवेश और प्रस्थान के माध्यम से कहनी है। इसलिए नाटक में अंक, दृश्य, संवाद और मंच-निर्देश बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। संवाद ही नाटक का प्राण है। इसके विपरीत पटकथा लेखक सिनेमा लिखते समय कैमरे को ध्यान में रखता है। उसे पता है कि कैमरा कहीं भी जा सकता है - पहाड़, नदी, फ्लैशबैक, भविष्य। इसलिए सिनेमा में शॉट, कट, लोकेशन, क्लोज-अप महत्वपूर्ण होते हैं। नाटककार को मंच की सीमा पता है, पटकथा लेखक को कैमरे की असीम शक्ति पता है। नाटक में एक ही सेट पर पूरी कहानी कहनी पड़ती है, जबकि सिनेमा में कहानी को 'खोलना' पड़ता है। जैसे मोहन राकेश के नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' में सब कुछ महल में होता है, पर फिल्म में उसे खेतों, बाजारों में दिखाना पड़ा। नाटक शब्द-प्रधान है, सिनेमा दृश्य-प्रधान है।

निष्कर्ष: नाटक की रचना मंच के अनुशासन में होती है, जबकि सिनेमा की रचना कैमरे की स्वतंत्रता में। एक की शक्ति संवाद और अभिनेता में है, दूसरे की शक्ति दृश्य और संपादन में।

प्रश्न 22. लेखक और निर्देशक में क्या संबंध है?

उत्तर: साहित्यिक रचना में लेखक सर्वसर्वा होता है, वह जो लिखता है वही अंतिम सत्य है। पर सिनेमा में निर्देशक सर्वसर्वा होता है, वह पटकथा को अपनी दृष्टि से व्याख्यायित करता है। जब किसी साहित्यिक कृति पर फिल्म बनती है तो लेखक और निर्देशक का संबंध सबसे जटिल हो जाता है। लेखक को लगता है कि निर्देशक ने उसकी कृति की आत्मा से छेड़छाड़ की, उसके पात्रों को बिगाड़ा। निर्देशक को लगता है कि फिल्म उसकी अपनी व्याख्या और रचना है, वह किताब की फोटोकॉपी नहीं है। अक्सर दोनों में संघर्ष होता है। सफल और अच्छी फिल्म वही

बनती है जहाँ लेखक और निर्देशक में परस्पर सम्मान और संवाद हो। 'तीसरी कसम' में फणीश्वरनाथ रेणु और बासु भट्टाचार्य के बीच ऐसा ही सम्मान था, इसलिए फिल्म साहित्यिक होते हुए भी सिनेमाई उत्कृष्ट बनी। रूपांतरण में लेखक को 'सह-रचनाकार' मानना चाहिए, न कि केवल कच्चे माल का आपूर्तिकर्ता। दोनों कलाकार हैं, एक शब्द का, दूसरा दृश्य का।

निष्कर्ष: अतः लेखक शब्द का निर्देशक है और निर्देशक दृश्य का लेखक है। दोनों का रिश्ता प्रतिस्पर्धा का नहीं, बल्कि सहयोग का होना चाहिए। जहाँ सम्मान है, वहीं श्रेष्ठ रूपांतरण जन्म लेता है।

प्रश्न 23. पाठक और दर्शक में अंतर।

उत्तर: पाठक और दर्शक दोनों कहानी के उपभोक्ता हैं, पर दोनों की भूमिका और मानसिकता में बड़ा अंतर है। पाठक सक्रिय होता है, वह पढ़ते हुए लगातार कल्पना करता है, शब्दों के अर्थ बनाता है, पात्रों की छवि अपने मन में गढ़ता है। पाठक का संबंध लेखक से एकांतिक, निजी और बौद्धिक होता है। वह अपनी गति से पढ़ सकता है, रुक सकता है, सोच सकता है। इसके विपरीत दर्शक अपेक्षाकृत निष्क्रिय होता है, उसे लेखक-निर्देशक द्वारा बना-बनाया बिंब, पात्रों की निश्चित छवि, संगीत और रंग मिलता है, उसे कल्पना कम करनी पड़ती है। दर्शक का अनुभव सामूहिक होता है - सिनेमा हॉल में सैकड़ों लोगों के साथ हंसना, रोना। पाठक का अनुभव एकांतिक होता है। साहित्य मुख्यतः बुद्धिजीवियों और शिक्षित वर्ग तक सीमित रहता है, जबकि सिनेमा निरक्षर से लेकर विद्वान तक जन-जन तक पहुँचता है। इसलिए लेखक पाठक की बुद्धिमत्ता पर भरोसा करता है, जबकि निर्देशक को दर्शक के मनोरंजन, भावना और बाजार तीनों का ध्यान रखना पड़ता है।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः पाठक अर्थ का निर्माता है, जबकि दर्शक अर्थ का ग्रहणकर्ता है। एक कल्पना करता है, दूसरा देखता है। दोनों की अपनी-अपनी शक्ति और सीमा है, जो दोनों माध्यमों को अलग बनाती है।

प्रश्न 24. साहित्यिक रचना प्रक्रिया के चरण।

उत्तर: साहित्यिक रचना प्रक्रिया एक आंतरिक, मानसिक और एकाकी यात्रा है जिसके चार मुख्य चरण माने गए हैं। पहला चरण है अनुभव - लेखक जीवन, समाज, प्रकृति, लोगों को गहराई से देखता, सुनता और भोगता है। बिना अनुभव के साहित्य नहीं बनता। प्रेमचंद गांव-गांव घूमते थे। दूसरा चरण है भाव - अनुभव से हृदय में भाव पैदा होता है, जैसे दुख, प्रेम, क्रोध, करुणा। तीसरा चरण है विचार - लेखक उस भाव को विचार में ढालता है, उसका कारण, परिणाम और सामाजिक अर्थ सोचता है। चौथा और अंतिम चरण है अभिव्यक्ति - उस विचार और भाव को भाषा, शब्द, बिंब, अलंकार के माध्यम से लिखना। यह सबसे कठिन चरण है। यह पूरी प्रक्रिया एकाकी है, इसमें कलम और कागज ही साथी हैं। यह लंबी, धीमी और

आत्ममंथन वाली प्रक्रिया है। लेखक कई बार लिखता है, काटता है, फिर लिखता है। इसमें किसी तकनीक या बजट की जरूरत नहीं, केवल संवेदना और भाषा की जरूरत है।

निष्कर्ष: अतः साहित्यिक रचना अनुभव से अभिव्यक्ति तक की आंतरिक यात्रा है। यह लेखक के मन में घटती है और शब्दों में प्रकट होती है। यही कारण है कि साहित्य में लेखक की आत्मा झलकती है।

प्रश्न 25. सिनेमाई रचना प्रक्रिया के चरण।

उत्तर: सिनेमाई रचना प्रक्रिया साहित्य की तरह एकाकी नहीं, बल्कि सामूहिक, तकनीकी और औद्योगिक प्रक्रिया है जिसके पाँच बड़े चरण होते हैं। पहला चरण है विचार - एक छोटी सी लाइन या आइडिया, जैसे 'गाड़ीवाले और नर्तकी का प्रेम'। दूसरा चरण है पटकथा और संवाद लेखन - इस विचार को 100-120 पन्नों की पटकथा में बदलना। तीसरा चरण है प्री-प्रोडक्शन - लोकेशन देखना, कास्टिंग करना, बजट बनाना, वेशभूषा तय करना। चौथा चरण है शूटिंग या प्रोडक्शन - कैमरे से अभिनय को रिकॉर्ड करना, यह सबसे खर्चीला चरण है। पाँचवाँ और अंतिम चरण है पोस्ट-प्रोडक्शन - एडिटिंग, डबिंग, संगीत, VFX, सेंसर। यह प्रक्रिया सैकड़ों लोगों, करोड़ों रुपये और महीनों के समय से पूरी होती है। साहित्य में एक कलम काफी है, सिनेमा में कैमरा, लाइट, ट्रॉली, स्टूडियो सब चाहिए। साहित्य में लेखक अकेला लेखक है, सिनेमा में निर्देशक सैकड़ों लोगों का कैप्टन है। यही कारण है कि सिनेमा को उद्योग भी कहा जाता है।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः सिनेमाई रचना एक टीम-वर्क है। यह विचार से पर्दे तक की लंबी तकनीकी यात्रा है। जहाँ साहित्य एक व्यक्ति की साधना है, वहीं सिनेमा एक पूरी टीम की साधना है।

प्रश्न 26. शॉट क्या है? प्रकार।

उत्तर: शॉट सिनेमा की सबसे छोटी, अविभाज्य और मूल इकाई है, जैसे साहित्य में शब्द। कैमरे द्वारा एक बार में, बिना रुके, बिना कट के रिकॉर्ड किया गया दृश्यांश शॉट कहलाता है। शॉट कई प्रकार के होते हैं और हर शॉट का अपना भावनात्मक अर्थ होता है। क्लोज-अप शॉट - चेहरे के भाव, आँसू, मुस्कान दिखाने के लिए, जैसे हीराबाई की आंखों का क्लोज-अप। मिड शॉट - आधे शरीर तक, संवाद के लिए। लॉन्ग शॉट - पूरा दृश्य, पात्र और पृष्ठभूमि दिखाने के लिए, जैसे मेले का लॉन्ग शॉट। एक्सट्रीम लॉन्ग शॉट - पहाड़, नदी, गांव का विस्तार दिखाने के लिए। साहित्य में विशेषण, क्रिया-विशेषण जो काम करते हैं, सिनेमा में शॉट वही काम करते हैं। लेखक लिखता है 'वह बहुत दुखी थी', निर्देशक दुखी चेहरे का क्लोज-अप दिखा देता है। शॉट का चयन ही निर्देशक की शैली और संवेदना को दिखाता है। सत्यजित राय क्लोज-अप के मास्टर थे।

निष्कर्ष: अतः शॉट सिनेमा का शब्द है। शॉट्स का सही चयन और संयोजन ही अच्छी फिल्म बनाता है। बिना शॉट की समझ के सिनेमा की भाषा को नहीं समझा जा सकता।

प्रश्न 27. सीन क्या है?

उत्तर: सीन सिनेमा की दूसरी इकाई है, जैसे साहित्य में वाक्य। एक ही स्थान, एक ही समय में, एक ही घटना से जुड़े कई शॉट्स के समूह को सीन कहते हैं। जैसे 'हीरामन की गाड़ी पर हीराबाई का बैठना' - यह एक सीन है। इस सीन में 10-15 शॉट हो सकते हैं - गाड़ी का शॉट, हीरामन का शॉट, हीराबाई का शॉट, बैलों का शॉट, रास्ते का शॉट। साहित्य में जैसे कई शब्द मिलकर वाक्य बनाते हैं और एक पूरा विचार देते हैं, वैसे ही कई शॉट मिलकर सीन बनाते हैं और एक पूरी छोटी घटना देते हैं। सीन फिल्म की कथा की मूल इकाई है। अच्छी फिल्म में एक सीन एक ही भाव या कार्य पर केंद्रित होता है। सीन की लंबाई निर्देशक तय करता है। कुछ सीन 30 सेकंड के होते हैं, कुछ 5 मिनट के। सीन का अंत अक्सर कट, फेड या डिजॉल्व से होता है। पटकथा में सीन को नंबर दिया जाता है, जैसे सीन-1, सीन-2। सीन ही फिल्म को गति देता है।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः सीन शॉट्स का सार्थक समूह है। जैसे वाक्य से विचार बनता है, वैसे सीन से घटना बनती है। फिल्म की कहानी सीन दर सीन ही आगे बढ़ती है।

प्रश्न 28. सीक्वेंस क्या है?

उत्तर: सीक्वेंस सिनेमा की तीसरी और बड़ी इकाई है, जैसे साहित्य में अनुच्छेद या अध्याय। कई सीन मिलकर जो एक बड़ी घटना, एक बड़े भाव या एक बड़े समय-खंड को पूरा करते हैं, उसे सीक्वेंस कहते हैं। उदाहरण के लिए 'मेला सीक्वेंस' - इसमें कई सीन होंगे - मेले में जाने का सीन, नौटंकी देखने का सीन, हीरामन-हीराबाई की पहली मुलाकात का सीन, लौटने का सीन। ये सब सीन मिलकर एक मेला सीक्वेंस बनाते हैं। साहित्य में जैसे कई अनुच्छेद मिलकर एक अध्याय बनाते हैं, वैसे ही कई सीन मिलकर सीक्वेंस बनाते हैं। फिल्म में आमतौर पर 8-10 बड़े सीक्वेंस होते हैं। हर सीक्वेंस का एक अपना आरंभ, मध्य और अंत होता है। सीक्वेंस फिल्म को बड़ा ढांचा देता है। हॉलीवुड में इसे 'श्री एक्ट स्ट्रक्चर' भी कहते हैं। सीक्वेंस की समझ से ही फिल्म की बड़ी संरचना समझ में आती है। अच्छी फिल्म में सीक्वेंस एक-दूसरे से भावनात्मक रूप से जुड़े होते हैं।

निष्कर्ष: अतः सीक्वेंस सीनों का बड़ा समूह है जो फिल्म की कहानी को बड़े भागों में बांटता है। जैसे अध्याय से किताब बनती है, वैसे सीक्वेंस से फिल्म बनती है।

प्रश्न 29. मोंटाज क्या है?

उत्तर: मोंटाज सिनेमा की सबसे अपनी, सबसे विशिष्ट और सबसे शक्तिशाली भाषा है जो साहित्य में नहीं है। मोंटाज का सिद्धांत रूसी निर्देशक सर्गेई आइजेंस्टीन ने दिया था। मोंटाज का अर्थ

हैं दो अलग-अलग, असंबंधित शॉट्स को एक साथ जोड़कर तीसरा नया अर्थ, नया भाव पैदा करना। जैसे - एक शॉट में भूखा, गरीब आदमी का चेहरा और उसके तुरंत बाद दूसरे शॉट में गरम रोटी का शॉट - दर्शक के मन में भूख का तीव्र भाव पैदा होगा, जबकि दोनों शॉट अलग-अलग हैं। साहित्य में रूपक, उत्प्रेक्षा, लक्षणा अलंकार जो काम करते हैं, सिनेमा में मोंटाज वही काम करता है। मोंटाज बुद्धि और भावना दोनों को जोड़ता है। 'तीसरी कसम' में हीरामन के अकेलेपन के शॉट के साथ खाली सड़क के शॉट का मोंटाज है। मोंटाज से समय को छोटा किया जा सकता है, विचार को दिखाया जा सकता है। यह सिनेमा को साहित्य से अलग और श्रेष्ठ बनाता है क्योंकि यह केवल दिखाता नहीं, बल्कि अर्थ भी पैदा करता है।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः मोंटाज सिनेमा की अपनी कविता है। यह दो दृश्यों को जोड़कर तीसरा अर्थ बनाता है। यही कारण है कि सिनेमा को केवल रिकॉर्डिंग नहीं, बल्कि सृजन की कला कहा जाता है।

प्रश्न 30. साहित्य और सिनेमा दोनों में समय का प्रयोग।

उत्तर: समय का प्रयोग साहित्य और सिनेमा दोनों में होता है, पर दोनों के तरीके अलग हैं। साहित्य में समय बहुत लचीला और मनोवैज्ञानिक होता है। लेखक एक पंक्ति में लिख सकता है - 'दस साल बीत गए', और पाठक मान लेता है। वह अतीत, वर्तमान, भविष्य में बिना किसी तकनीक के आ-जा सकता है। वह पात्र के मन के भीतर के समय को भी दिखा सकता है। सिनेमा में समय को दिखाना पड़ता है, बताना नहीं पड़ता। सिनेमा में समय दिखाने के लिए फ्लैशबैक, फ्लैश फॉरवर्ड, फेड, डिजॉल्व, घड़ी, कैलेंडर, दिन-रात जैसी तकनीकों का सहारा लेना पड़ता है। सिनेमा में दो तरह का समय होता है - घड़ी का समय जो वास्तविक है और मनोवैज्ञानिक समय जो पात्र के मन में है। साहित्य में लेखक मनोवैज्ञानिक समय आसानी से दिखा देता है, पर सिनेमा में उसे दिखाने के लिए स्लो-मोशन, संगीत, क्लोज-अप का सहारा लेना पड़ता है। साहित्य में समय को शब्दों से तोड़ा-मरोड़ा जा सकता है, सिनेमा में संपादन से। दोनों में समय ही कथा को गति देता है।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः साहित्य समय को बताता है, जबकि सिनेमा समय को दिखाता है। एक की शक्ति कल्पना में है, दूसरे की शक्ति दृश्य तकनीक में। दोनों अपने-अपने तरीके से समय को कथा का शक्तिशाली औजार बनाते हैं।

UNIT-3: हिन्दी सिनेमा का उद्भव-विकास

प्रश्न 31. हिन्दी सिनेमा की प्रारंभिक पृष्ठभूमि क्या थी? किन परिस्थितियों में इसका जन्म हुआ? विस्तार से समझाइए।

उत्तर: हिन्दी सिनेमा का जन्म अचानक नहीं हुआ, बल्कि इसकी पृष्ठभूमि में 19वीं सदी का वैज्ञानिक आविष्कार और पारसी थिएटर की परंपरा थी। 7 जुलाई 1896 को बंबई के वाटसन होटल में ल्यूमियर बंधुओं ने पहली बार चलती-फिरती तस्वीरें दिखाईं, तब इसे जादू समझा गया। उस समय भारत में मनोरंजन के साधन नौटंकी, रामलीला, पारसी थिएटर थे। सिनेमा ने उन्हीं की कहानियों, वेशभूषा और अतिरंजित अभिनय को अपनाया। शुरुआती दौर में सिनेमा को 'तमाशा' और निम्न वर्ग का मनोरंजन माना जाता था, इसे कला का दर्जा प्राप्त नहीं था। मूक फिल्मों का दौर था, जिसमें कहानी को समझाने के लिए बीच-बीच में शीर्षक कार्ड आते थे। संगीत और संवाद नहीं थे, केवल हारमोनियम और तबले पर पृष्ठभूमि संगीत बजता था। यह दौर प्रयोग, संघर्ष और नई तकनीक सीखने का दौर था। विदेशी कैमरा, विदेशी फिल्म और भारतीय कहानी का मेल ही प्रारंभिक सिनेमा की पहचान थी।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः हिन्दी सिनेमा की प्रारंभिक पृष्ठभूमि पारसी थिएटर और विदेशी तकनीक के संगम से बनी। यह तमाशे से शुरू होकर धीरे-धीरे कला बनने की ओर बढ़ा, जिसकी नींव मूक फिल्मों के प्रयोगशील दौर में पड़ी।

प्रश्न 32. प्रथम भारतीय फिल्म कौन सी है? दादा साहब फाल्के का परिचय देते हुए उसके महत्व पर प्रकाश डालिए।

उत्तर: प्रथम भारतीय फिल्म दादा साहब फाल्के द्वारा निर्मित 'राजा हरिश्चंद्र' है, जो 3 मई 1913 को बंबई के कोरोनेशन थिएटर में दिखाई गई। यह एक मूक फिल्म थी, लगभग 40 मिनट की, जिसमें 4 रील थीं। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह पूरी तरह भारतीय तकनीशियनों, भारतीय कथा और भारतीय पूंजी से बनी थी। दादा साहब फाल्के का मूल नाम धुंडिराज गोविंद फाल्के था। उन्होंने लंदन जाकर फिल्म बनाने की तकनीक सीखी और अपनी सारी संपत्ति दांव पर लगा दी। उन्होंने पौराणिक कथा को इसलिए चुना क्योंकि भारतीय दर्शक उससे जुड़ा था। उस समय स्त्रियाँ फिल्मों में काम नहीं करती थीं, इसलिए सालुंके नामक पुरुष ने तारामती का किरदार निभाया। यह फिल्म भारतीय सिनेमा का जन्म प्रमाण पत्र है। इसे 'राष्ट्रीय सिनेमा की शुरुआत' कहता है। फाल्के ने इसके बाद 95 फिल्मों और 26 लघु फिल्मों बनाईं और भारतीय सिनेमा को आत्मनिर्भर बनाया। आज उनके नाम पर भारतीय सिनेमा का सर्वोच्च दादा साहब फाल्के पुरस्कार दिया जाता है।

निष्कर्ष: अतः 'राजा हरिश्चंद्र' केवल पहली फिल्म नहीं, बल्कि भारतीय आत्मसम्मान का प्रतीक थी। दादा साहब फाल्के ने सिद्ध किया कि भारतीय भी फिल्म बना सकते हैं और इसीलिए उन्हें भारतीय सिनेमा का पितामह कहा जाता है।

प्रश्न 33. सवाक् फिल्मों की शुरुआत कब और कैसे हुई? 'आलम आरा' का महत्व बताइए।

उत्तर: मूक फिल्मों का दौर 1931 तक चला। 14 मार्च 1931 को अर्देशिर ईरानी ने बंबई के मैजेस्टिक सिनेमा में 'आलम आरा' प्रदर्शित की, जो भारत की पहली बोलती फिल्म यानी

सवाक् फिल्म थी। इसमें 7 गाने थे और पहला गाना था 'दे दे खुदा के नाम पर'। सवाक् आते ही सिनेमा में क्रांति आ गई। अब पर्दे पर पात्र बोलने लगे, गाने लगे। मूक फिल्मों के कई बड़े सितारे जिनकी आवाज अच्छी नहीं थी, रातों-रात खत्म हो गए और नए सितारे जिनकी आवाज अच्छी थी, जैसे कुंदनलाल सहगल, आ गए। सवाक् आते ही सिनेमा साहित्य के और करीब आ गया, क्योंकि अब संवाद साहित्यिक होने लगे। उर्दू-हिन्दी मिश्रित भाषा का प्रयोग शुरू हुआ। फिल्मों में गीत-संगीत अनिवार्य हो गया। 'आलम आरा' ने सिनेमा को केवल दिखने वाली कला से सुनने और महसूस करने वाली कला बना दिया। इसी के बाद बाम्बे टॉकीज, प्रभात जैसे बड़े स्टूडियो बने। यह फिल्म आज उपलब्ध नहीं है, पर इसका ऐतिहासिक महत्व अमर है।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः 'आलम आरा' ने सिनेमा को आवाज दी और उसे मूक से सवाक् बनाकर जन-जन की भाषा बना दिया। इसी के साथ हिन्दी सिनेमा में गीत, संगीत और संवाद का स्वर्णिम युग शुरू हुआ।

प्रश्न 34. 1931 से 1947 तक के हिन्दी सिनेमा के विकास का वर्णन कीजिए। इसे स्टूडियो युग क्यों कहा जाता है?

उत्तर: 1931 से 1947 तक के समय को हिन्दी सिनेमा में स्टूडियो युग कहा जाता है क्योंकि इस दौरान फिल्में व्यक्तिगत निर्माताओं ने नहीं, बल्कि बड़े-बड़े स्टूडियो ने बनाईं। प्रमुख स्टूडियो थे - बाम्बे टॉकीज, प्रभात फिल्म कंपनी, न्यू थिएटर्स। ये स्टूडियो हॉलीवुड की तरह काम करते थे, जहाँ अभिनेता, निर्देशक, लेखक सब मासिक वेतन पर काम करते थे। इस दौर में सामाजिक, पौराणिक और ऐतिहासिक फिल्में बनीं। प्रगतिशील लेखक संघ का सिनेमा पर गहरा प्रभाव पड़ा। प्रेमचंद ने स्वयं 1934 में 'मजदूर' फिल्म की पटकथा लिखी और 'गोदान' पर भी फिल्म बनी। 'अछूत कन्या', 'किसान कन्या', 'देवदास' - 1936 - शरतचंद्र के उपन्यास पर बनी - इस दौर की साहित्यिक फिल्में हैं। कुंदनलाल सहगल, देविका रानी, अशोक कुमार इस दौर के बड़े सितारे थे। इस दौर में साहित्य और सिनेमा सबसे करीब आए क्योंकि स्टूडियो मालिक पढ़े-लिखे थे और अच्छी कहानियों की तलाश में साहित्यकारों के पास जाते थे। यह सिनेमा के पेशेवर होने का दौर था।

निष्कर्ष: अतः स्टूडियो युग सिनेमा के संगठित, साहित्यिक और सामाजिक होने का युग था। इसने सिनेमा को तमाशे से निकालकर एक गंभीर और जिम्मेदार कला-उद्योग बनाया।

प्रश्न 35. स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से आपातकाल तक (1948-1977) हिन्दी सिनेमा के विकास की विवेचना कीजिए।

उत्तर: 1948 से 1977 तक का समय हिन्दी सिनेमा का स्वर्ण युग कहलाता है। 1947 में देश आजाद हुआ तो सिनेमा ने नए, स्वतंत्र भारत के सपने, गरीबी, बेरोजगारी और आदर्शवाद को दिखाया। इस दौर की प्रमुख फिल्में हैं - 'दो बीघा जमीन', 'मदर इंडिया', 'प्यासा', 'कागज के

फूल', 'गंगा जमुना'। नेहरू युग के समाजवाद का प्रभाव सिनेमा पर स्पष्ट था। 1960 के दशक में साहित्य पर आधारित श्रेष्ठ फिल्में बनीं - विमल रॉय की 'देवदास', 'मधुमति', बिमल मित्र के उपन्यास पर 'साहब बीबी और गुलाम', फणीश्वरनाथ रेणु पर 'तीसरी कसम' - 1966। इसी दौर में समानांतर सिनेमा की नींव पड़ी - मृणाल सेन, ऋत्विक् घटक, सत्यजित राय ने यथार्थवादी फिल्में बनाईं। राजकपूर, गुरुदत्त, बिमल रॉय ने सिनेमा को कला और मनोरंजन का संतुलन दिया। दिलीप कुमार, देव आनंद, मीना कुमारी, नर्गिस जैसे महान अभिनेता इसी युग की देन हैं। संगीत में शंकर-जयकिशन, नौशाद, एस.डी. बर्मन ने अमर गीत दिए। यह सिनेमा केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि देश-निर्माण का माध्यम था।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः 1948-77 का दौर हिन्दी सिनेमा का कलात्मक और वैचारिक शिखर था। इसने स्वतंत्र भारत के सामाजिक यथार्थ और आदर्श दोनों को पर्दे पर पूरी ईमानदारी और सुंदरता के साथ प्रस्तुत किया।

प्रश्न 36. आपातकाल से भूमंडलीकरण के पूर्व तक (1975-1991) हिन्दी सिनेमा में क्या परिवर्तन आए?

उत्तर: 1975 में इंदिरा गांधी ने आपातकाल लगाया तो सिनेमा पर भी सेंसर का सख्त पहरा बैठ गया। गुलजार की 'आंधी' जैसी राजनीतिक फिल्म बैन कर दी गई। इस दमन के खिलाफ सिनेमा ने 'एंग्री यंग मैन' का रूप धारण किया। अमिताभ बच्चन 'दीवार', 'जंजीर', 'त्रिशूल' में व्यवस्था के खिलाफ गुस्सा करने वाला नायक बनकर उभरे। यह गरीब, बेरोजगार युवा का प्रतीक था। 80 के दशक में वीडियो कैसेट और टीवी के आने से सिनेमा हॉल खाली होने लगे, सिनेमा का बड़ा संकट आया। इस संकट के बीच दो धाराएं चलीं - एक तरफ मसाला फिल्में - 'शोले', 'अमर अकबर एंथनी' और दूसरी तरफ समानांतर सिनेमा - श्याम बेनेगल की 'अंकुर', 'निशांत', 'भूमिका', गोविंद निहलानी की 'आक्रोश'। मध्यम मार्ग की फिल्में भी आईं - 'बाजार', 'अर्थ', 'स्पर्श'। ये फिल्में साहित्यिक, यथार्थवादी और स्त्री-समस्याओं पर केंद्रित थीं। यह दौर सिनेमा के संघर्ष, विद्रोह और नए रास्ते तलाशने का दौर था।

निष्कर्ष: अतः 1975-91 का दौर सिनेमा के गुस्से, संकट और समानांतर खोज का दौर था। इसने एक तरफ व्यवस्था के खिलाफ नायक दिया और दूसरी तरफ यथार्थवादी सिनेमा को मजबूत किया।

प्रश्न 37. भूमंडलीकरण के बाद से वर्तमान तक (1991-2026) हिन्दी सिनेमा की प्रवृत्तियों का विश्लेषण कीजिए।

उत्तर: 1991 में आर्थिक उदारीकरण और भूमंडलीकरण शुरू हुआ तो सिनेमा भी ग्लोबल हो गया। NRI दर्शक बड़ा बाजार बन गया, इसलिए 'दिलवाले दुल्हनिया ले जाएंगे', 'परदेस', 'कुछ कुछ होता है' जैसी प्रवासी भारतीयों की फिल्में बनीं। मल्टीप्लेक्स आए, कॉरपोरेट फंडिंग आई, सिनेमा उद्योग बन गया। 2000 के बाद दो तरह का सिनेमा एक साथ चला - एक तरफ बड़े

बजट की VFX वाली फिल्में - 'लगान', 'दंगल', 'बाहुबली', 'पठान' और दूसरी तरफ छोटे शहर, कस्बे की यथार्थवादी फिल्में - 'गली बॉय', 'बरेली की बर्फी', 'आर्टिकल 15'। 2016 के बाद OTT - Netflix, Amazon Prime, Hotstar - ने सिनेमा की परिभाषा ही बदल दी। अब फिल्म 3 घंटे की सीमा में नहीं, 8-10 एपिसोड की वेब सीरीज में उपन्यास जैसा विस्तार पा रही है - 'पाताल लोक', 'पंचायत', 'गुल्लक', 'स्कैम'। तकनीक में VFX, AI, Dolby का प्रयोग बढ़ा है। आज सिनेमा एक साथ ग्लोबल होते हुए भी लोकल कहानियां कह रहा है और यही इसकी सबसे बड़ी शक्ति है।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः भूमंडलीकरण के बाद का सिनेमा तकनीक और बाजार में वैश्विक है, पर कहानी और भावना में पूरी तरह भारतीय और स्थानीय है। OTT ने साहित्य और सिनेमा को फिर से एक-दूसरे के सबसे करीब ला दिया है।

प्रश्न 38. दादा साहब फाल्के का भारतीय सिनेमा में क्या योगदान है? विस्तार से लिखिए।

उत्तर: दादा साहब फाल्के को भारतीय सिनेमा का पितामह कहा जाता है क्योंकि उन्होंने शून्य से भारतीय सिनेमा की नींव रखी। उनका मूल नाम धुंडिराज गोविंद फाल्के था। वे एक चित्रकार, फोटोग्राफर और जादूगर थे। 1910 में उन्होंने 'लाइफ ऑफ क्राइस्ट' फिल्म देखी और सोचा कि भारतीय देवी-देवताओं पर ऐसी फिल्म क्यों नहीं बन सकती। वे लंदन गए, कैमरा, फिल्म बनाने की तकनीक सीखी और अपनी बीमा पॉलिसी, पत्नी के गहने बेचकर 1913 में 'राजा हरिश्चंद्र' बनाई। यह फिल्म पूरी तरह स्वदेशी थी। उन्होंने 1913 से 1937 तक लगभग 95 फिल्में और 26 लघु फिल्में बनाई - 'मोहिनी भस्मासुर', 'लंका दहन'। उन्होंने सिनेमा को केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि स्वदेशी आंदोलन का हिस्सा बनाया। उन्होंने भारतीय कथा, भारतीय अभिनेता, भारतीय तकनीशियन से आत्मनिर्भर सिनेमा का सपना साकार किया। अगर वे न होते तो भारतीय सिनेमा कई साल पीछे होता। उनके सम्मान में 1969 से भारत सरकार भारतीय सिनेमा का सर्वोच्च पुरस्कार दादा साहब फाल्के पुरस्कार देती है।

निष्कर्ष: अतः दादा साहब फाल्के केवल फिल्म निर्माता नहीं, बल्कि भारतीय सिनेमा के स्वप्नदृष्टा, वैज्ञानिक और राष्ट्र-निर्माता थे। उन्होंने भारतीय संस्कृति को तकनीक के माध्यम से अमर बना दिया।

प्रश्न 39. बाम्बे टॉकीज का हिन्दी सिनेमा के विकास में क्या योगदान है?

उत्तर: बाम्बे टॉकीज की स्थापना 1934 में हिमांशु राय और उनकी पत्नी देविका रानी ने की थी। यह भारत का पहला आधुनिक, पेशेवर और संगठित फिल्म स्टूडियो था जो जर्मनी के UFA स्टूडियो की तर्ज पर बनाया गया था। इसका योगदान चार क्षेत्रों में है। पहला - तकनीक - इसने भारत में पहली बार ट्रॉली, लाइटिंग, साउंड रिकॉर्डिंग, लैब की आधुनिक तकनीक लाई। दूसरा - प्रतिभा निर्माण - इसने अशोक कुमार, दिलीप कुमार, राजकपूर, देवानंद जैसे महान

अभिनेताओं, लेखकों और तकनीशियनों को प्रशिक्षित किया। तीसरा - साहित्यिक और सामाजिक फिल्मों - 'अछूत कन्या' - 1936 - में दलित समस्या पर फिल्म बनाकर सामाजिक सुधार का काम किया। चौथा - पेशेवर व्यवस्था - यहाँ कलाकार मासिक वेतन पर काम करते थे, अनुशासन था, समय पर शूटिंग होती थी। बाम्बे टॉकीज ने सिनेमा को पारसी थिएटर के तमाशे से निकालकर एक अनुशासित उद्योग और कला बनाया। अगर बाम्बे टॉकीज न होता तो हिन्दी सिनेमा इतनी जल्दी पेशेवर नहीं बन पाता।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः बाम्बे टॉकीज भारतीय सिनेमा की पहली फिल्म पाठशाला थी। इसने तकनीक, प्रतिभा और सामाजिक चेतना तीनों देकर हिन्दी सिनेमा को आधुनिक, पेशेवर और जिम्मेदार बनाया।

प्रश्न 40. समानांतर सिनेमा क्या है? इसकी विशेषताएं और प्रमुख फिल्मों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर: समानांतर सिनेमा मुख्यधारा के मसाला, फॉर्मूला सिनेमा के विरुद्ध 1969 के बाद शुरू हुआ यथार्थवादी, कलात्मक और साहित्यिक सिनेमा आंदोलन है। इसे 'नया सिनेमा', 'कला फिल्म' भी कहा जाता है। इसके जनक मृणाल सेन की 'भुवन शोम', श्याम बेनेगल, गोविंद निहलानी, बासु भट्टाचार्य, सत्यजित राय हैं। इसकी पाँच विशेषताएं हैं - 1. कम बजट, असली लोकेशन, नए और गैर-स्टार चेहरे। 2. साहित्यिक कथा - प्रेमचंद, रेणु, महाश्वेता देवी की कहानियों पर फिल्में। 3. ग्रामीण और निम्न-मध्यम वर्ग का यथार्थ। 4. मनोरंजन से ज्यादा सामाजिक संदेश और सोच। 5. पुरस्कारों के लिए, बाजार के लिए नहीं। प्रमुख फिल्में हैं - 'तीसरी कसम', 'अंकुर', 'निशांत', 'मंथन', 'आक्रोश', 'अर्ध सत्य', 'पार', 'भूमिका'। 'तीसरी कसम' को इसका पहला बीज माना जाता है। यह सिनेमा हिट नहीं था, पर इसने सिनेमा को कला के रूप में अंतरराष्ट्रीय सम्मान दिलाया।

निष्कर्ष: अतः समानांतर सिनेमा सिनेमा की अंतरात्मा है। यह बाजार की चमक-दमक से दूर समाज के हाशिये पर पड़े लोगों, किसानों, मजदूरों और स्त्रियों के सच्चे जीवन को पर्दे पर लाता है।

प्रश्न 41. मसाला फिल्म क्या है? इसकी विशेषताएं बताइए।

उत्तर: मसाला फिल्म शब्द प्रसिद्ध निर्देशक-निर्माता मनमोहन देसाई ने गढ़ा था। मसाला फिल्म का अर्थ है - ऐसी फिल्म जिसमें दर्शक के लिए हर तरह का मसाला हो - एक्शन, कॉमेडी, रोमांस, ड्रामा, गीत, नृत्य, पारिवारिक भावना और बदले की कहानी सब एक साथ। जैसे - 'अमर अकबर एंथनी', 'नसीब', 'कुली', 'शोले'। यह पूरी तरह मनोरंजन के लिए बनाई जाती है, इसका लक्ष्य सोच पैदा करना नहीं, बल्कि पैसा कमाना होता है। इसकी विशेषताएं हैं - 1. फॉर्मूला कहानी - बिछड़ा हुआ भाई, गरीब नायक, अमीर खलनायक। 2. सितारा प्रधान - बड़े स्टार ही फिल्म बेचते हैं। 3. अतिरंजित अभिनय और संवाद। 4. 5-6 हिट गाने। 5. सुखद अंत। यह साहित्य से सबसे दूर है, इसका साहित्यिक मूल्य कम है, पर यही हिन्दी सिनेमा की

सबसे बड़ी पहचान और आर्थिक ताकत बनी। भारत ही नहीं, विदेशों में भी मसाला फिल्में सबसे ज्यादा देखी जाती हैं। 70-90 के दशक में यही मुख्यधारा थी।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः मसाला फिल्म हिन्दी सिनेमा का लोकप्रिय चेहरा है। भले ही यह कलात्मक रूप से कमजोर हो, पर यह जन-जन के मनोरंजन, भावनाओं और सपनों को पूरा करती है, इसलिए यह हमेशा जीवित रहेगी।

प्रश्न 42. प्रथम सवाक् फिल्म 'आलम आरा' के महत्व पर प्रकाश डालिए।

उत्तर: 'आलम आरा' का महत्व केवल पहली बोलती फिल्म होने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह भारतीय सिनेमा के इतिहास में एक युगांतकारी मोड़ है। 14 मार्च 1931 से पहले सिनेमा गूंगा था, केवल आंखों से देखा जाता था, 'आलम आरा' ने उसे जुबान दी, अब वह सुना भी जाने लगा। इस फिल्म में 7 गाने थे, जिसने सिद्ध किया कि भारतीय दर्शक गीत-संगीत के बिना फिल्म नहीं देख सकता और तभी से हिन्दी फिल्मों में गीत अनिवार्य हो गए। इसने मूक फिल्मों के अभिनेताओं का करियर खत्म कर दिया जिनकी आवाज अच्छी नहीं थी और सहगल, देविका रानी जैसे सुरीली आवाज वाले कलाकारों का युग शुरू किया। इसने उर्दू-हिन्दी मिश्रित 'हिन्दुस्तानी' भाषा को फिल्मों की भाषा बनाया। तकनीकी रूप से इसने साउंड रिकॉर्डिंग, प्लेबैक की नींव रखी। सांस्कृतिक रूप से इसने सिनेमा को साहित्य और संगीत के और करीब ला दिया। दुर्भाग्य से इस फिल्म का कोई प्रिंट आज उपलब्ध नहीं है, पर इसका ऐतिहासिक महत्व अमर है।

निष्कर्ष: अतः 'आलम आरा' वह फिल्म है जिसने सिनेमा को गूंगा से बोलता, केवल दृश्य से दृश्य-श्रव्य बनाया और हिन्दी सिनेमा में गीत-संगीत-संवाद के स्वर्णिम युग की शुरुआत की।

प्रश्न 43. हिन्दी सिनेमा में साहित्य का प्रवेश कब और कैसे हुआ?

उत्तर: हिन्दी सिनेमा में साहित्य का प्रवेश 1930 के दशक से ही शुरू हो गया था, यानी सवाक् फिल्मों के साथ ही। इसका पहला बड़ा कदम प्रेमचंद ने उठाया। 1934 में उन्होंने 'मजदूर' फिल्म की पटकथा स्वयं लिखी और अजंता सिनेटोन के लिए काम किया। हालांकि उन्हें सिनेमा की दुनिया रास नहीं आई, पर उन्होंने रास्ता दिखा दिया। 1936 में शरत्चंद्र चट्टोपाध्याय के बांग्ला उपन्यास 'देवदास' पर पहली बार हिन्दी में फिल्म बनी और वह सुपरहिट हुई, इससे निर्माताओं को समझ आया कि साहित्यिक कहानियों में दर्शक हैं। इसके बाद रवींद्रनाथ टैगोर, बंकिमचंद्र, प्रेमचंद की कहानियों पर लगातार फिल्में बनीं। बाम्बे टॉकीज, प्रभात जैसे स्टूडियो साहित्यकारों को आदर के साथ बुलाते थे। साहित्य ने सिनेमा को अच्छी, परखी हुई कहानी, गहरी भाषा और सामाजिक प्रतिष्ठा दी और सिनेमा ने साहित्य को व्यापक दर्शक और पैसा दिया। यही लेन-देन आज OTT तक जारी है।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः साहित्य सिनेमा में 1930 से ही प्रवेश कर गया था और तब से दोनों का अटूट रिश्ता बना हुआ है। साहित्य ने सिनेमा को कहानी दी और सिनेमा ने साहित्य को जन-जन तक पहुँचाया।

प्रश्न 44. वर्तमान में सिनेमा और OTT के संबंधों की विवेचना कीजिए।

उत्तर: वर्तमान में OTT - Over The Top - प्लेटफॉर्म - Netflix, Amazon Prime Video, Hotstar, Sony Liv - ने सिनेमा और साहित्य दोनों की परिभाषा और संबंध बदल दिए हैं। पहले सिनेमा केवल सिनेमा हॉल में 3 घंटे की फिल्म था, अब वह मोबाइल, टीवी, लैपटॉप पर 8-10 घंटे की वेब सीरीज भी है। OTT की सबसे बड़ी क्रांति यह है कि इसने सिनेमा को 3 घंटे की समय-सीमा से मुक्त कर दिया है। अब उपन्यास जैसी बड़ी, विस्तृत कहानी को बिना काटे-छांटे पूरी तरह दिखाया जा सकता है। जैसे 'स्कैम 1992', 'पाताल लोक', 'पंचायत', 'गुल्लक', 'मिर्जापुर' - सब साहित्यिक संवेदना और उपन्यास जैसी बुनावट वाली हैं। OTT ने साहित्यकारों के लिए रोजगार का नया बड़ा बाजार खोला है - पटकथा लेखन, संवाद लेखन। अब सिनेमा हॉल का टिकट नहीं, बल्कि कहानी बिकती है। दर्शक अब स्टार नहीं, बल्कि अच्छी कहानी देखना चाहता है। OTT ने साहित्य और सिनेमा की दूरी को लगभग खत्म कर दिया है और साहित्यिक कृतियों को नया जीवन दिया है।

निष्कर्ष: अतः OTT ने सिनेमा को सिनेमा हॉल से निकालकर घर-घर और हाथ-हाथ तक पहुँचा दिया है। इसने साहित्यिक कहानियों को नया मंच, नया दर्शक और नया आर्थिक आधार दिया है, इसलिए यह साहित्य और सिनेमा दोनों के लिए वरदान है।

प्रश्न 45. हिन्दी सिनेमा के भविष्य पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

उत्तर: हिन्दी सिनेमा का भविष्य बहुत उज्ज्वल और हाइब्रिड होने वाला है। भविष्य में तीन चीजें एक साथ चलेंगी। पहली - थिएटर और OTT का सह-अस्तित्व - बड़ी, VFX वाली फिल्में - 'बाहुबली', 'पठान' - थिएटर में देखी जाएंगी और छोटी, कहानी-प्रधान, साहित्यिक फिल्में OTT पर। दूसरी - तकनीक और यथार्थ का मेल - एक तरफ AI, VFX, Virtual Production से तकनीक बढ़ेगी, दूसरी तरफ 'पंचायत', 'गुल्लक' जैसी ग्रामीण, यथार्थवादी कहानियों की मांग भी बढ़ेगी। तीसरी - ग्लोबल और लोकल का मेल - कहानी बिल्कुल लोकल - बिहारी, बुंदेलखंडी - होगी पर उसकी प्रस्तुति और दर्शक ग्लोबल होंगे। सिनेमा तकनीक से नहीं, बल्कि कहानी से जिंदा रहेगा और कहानी हमेशा साहित्य ही देगा। भविष्य में लेखक और निर्देशक का अंतर भी खत्म होगा, साहित्यकार ही पटकथा लिखेंगे। AI स्क्रिप्ट लिखने में मदद करेगा, पर भाव और संवेदना तो मानव ही देगा। इसलिए जब तक मानव है, कहानी है, तब तक सिनेमा है।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः हिन्दी सिनेमा का भविष्य तकनीक में वैश्विक और कहानी में भारतीय होगा। साहित्य और सिनेमा का अंतर्संबंध और भी गहरा होगा और दोनों मिलकर डिजिटल युग के दर्शक के लिए नया और समृद्ध अनुभव रचेंगे।

UNIT-4: हिन्दी साहित्यकारों की कृतियों पर बनी फिल्मों का परिचय

प्रश्न 46. फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी 'मारे गये गुलफाम उर्फ तीसरी कसम' का परिचय दीजिए।
उसकी कथावस्तु क्या है?

उत्तर: फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी 'मारे गये गुलफाम उर्फ तीसरी कसम' 1956 में उनके कहानी संग्रह 'ठुमरी' में प्रकाशित हुई थी। यह हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ आंचलिक कहानियों में से एक है। इसकी कथावस्तु है - हीरामन नाम का एक भोला-भाला, 40 पार का गाड़ीवाला जो अपनी बैलगाड़ी से सामान ढोता है। वह अब तक दो कसमें खा चुका है - चोरी की लकड़ी न लादने की और बांस न लादने की। तीसरी बार वह मेला से नौटंकी कंपनी की नर्तकी हीराबाई को अपनी गाड़ी में लादता है। हीराबाई सुंदर, अनुभवी, पर समाज द्वारा तिरस्कृत नर्तकी है। रास्ते में दोनों में आकर्षण, लगाव और अधूरा प्रेम पनपता है। हीरामन उसे देवी समझता है, वेश्या नहीं। पर हीराबाई जानती है कि उनका मेल असंभव है - वह शहर की नर्तकी, वह गांव का गाड़ीवाला। अंत में हीराबाई दूसरी कंपनी के साथ चली जाती है और हीरामन अकेला रह जाता है और तीसरी कसम खाता है कि अब कभी नौटंकी वाली को गाड़ी में नहीं बैठाएगा। रेणु ने इसमें पूर्णिया अंचल की भाषा, लोकगीत, गंध और संवेदना को जीवंत कर दिया है।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः यह कहानी प्रेम की असफलता, ग्रामीण भोलेपन और अकेली कामकाजी महिला की सामाजिक नियति की मार्मिक कहानी है। आंचलिकता और मानवीय संवेदना के कारण यह हिन्दी की अमर कहानी बन गई है।

प्रश्न 47. 'तीसरी कसम' फिल्म का परिचय दीजिए। उसके निर्माण, निर्देशक, कलाकार और संगीत पर प्रकाश डालिए।

उत्तर: 'तीसरी कसम' फिल्म 1966 में प्रदर्शित हुई थी। यह फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी 'मारे गये गुलफाम' पर आधारित है। इसके निर्माता प्रसिद्ध गीतकार शैलेन्द्र थे, जिन्होंने अपनी सारी पूंजी और मकान तक इस फिल्म में लगा दिया था। निर्देशक बासु भट्टाचार्य थे। मुख्य अभिनेता राजकपूर ने हीरामन का और वहीदा रहमान ने हीराबाई का अविस्मरणीय किरदार निभाया था। राजकपूर ने इस फिल्म के लिए कोई मेहनताना नहीं लिया था। पटकथा प्रसिद्ध साहित्यकार नबेंदु घोष ने लिखी थी, इसलिए फिल्म में साहित्यिक गहराई है। संगीत शंकर-जयकिशन का था और गीत शैलेन्द्र ने ही लिखे थे - 'चलत मुसाफिर मोह लियो रे', 'सजनवा बैरी भये हमार', 'पान खाए सैंया हमारो' आज भी अमर हैं। छायांकन सुब्रत मित्रा का था। यह फिल्म बॉक्स ऑफिस पर बुरी तरह फ्लॉप रही थी क्योंकि दर्शकों को राजकपूर से 'शो मैन' वाली फिल्म की उम्मीद थी, पर कला समीक्षकों ने इसे उत्कृष्ट माना और इसे राष्ट्रपति का स्वर्ण पदक - राष्ट्रीय पुरस्कार मिला। यह समानांतर और व्यावसायिक सिनेमा के बीच की फिल्म है।

निष्कर्ष: अतः 'तीसरी कसम' हिन्दी सिनेमा में साहित्य और सिनेमा के आदर्श संगम का उदाहरण है। भले ही यह व्यावसायिक रूप से असफल रही, पर कलात्मक रूप से यह भारतीय सिनेमा की महानतम फिल्मों में से एक है।

प्रश्न 48. 'तीसरी कसम' में हीरामन के चरित्र का विश्लेषण कीजिए। वह ग्रामीण भारत का प्रतिनिधि कैसे है?

उत्तर: हीरामन 'तीसरी कसम' का नायक है, एक 40-42 साल का बैलगाड़ी वाला। वह अनपढ़, भोला, निश्छल, संवेदनशील और भावुक है। उसने जीवन में बहुत दुख देखे हैं, पर उसका मन अभी भी बच्चे जैसा साफ है। वह हीराबाई को वेश्या या नर्तकी नहीं, बल्कि देवी समझता है। वह उसे सम्मान देता है, जो समाज उसे नहीं देता। हीरामन का चरित्र ग्रामीण भारत के उस आम आदमी का प्रतिनिधित्व करता है जो आधुनिकता, छल-कपट से दूर है और रिश्तों को दिल से निभाता है। उसने जीवन में दो कसमें खाई थीं - चोरी की लकड़ी न लादने की और बांस न लादने की, क्योंकि उनसे उसे नुकसान हुआ था। तीसरी कसम वह हीराबाई से बिछड़ने के बाद खाता है - अब कभी नौटंकी वाली को गाड़ी में नहीं बैठाएगा, क्योंकि उसे प्रेम में धोखा और पीड़ा मिली। राजकपूर ने इस चरित्र को अपनी आंखों, मुस्कान और बोली से जीवंत कर दिया। हीरामन का भोलापन, उसकी बैलगाड़ी, उसके बैल, उसके लोकगीत सब मिलकर एक सच्चे भारतीय ग्रामीण का चित्र बनाते हैं जो शहर की चालाकी नहीं जानता।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः हीरामन केवल एक गाड़ीवाला नहीं, बल्कि भारतीय गांव की सादगी, ईमानदारी और भावुकता का प्रतीक है। उसका टूटा हुआ प्रेम ग्रामीण मन की कोमलता और आधुनिक समाज की कठोरता के बीच के द्वंद्व को दिखाता है।

प्रश्न 49. 'तीसरी कसम' में हीराबाई के चरित्र का विश्लेषण कीजिए। वह आधुनिक कामकाजी महिला का प्रतीक कैसे है?

उत्तर: हीराबाई 'तीसरी कसम' की नायिका है, एक नौटंकी कंपनी की नर्तकी, गायिका और अभिनेत्री। वह सुंदर, चतुर, अनुभवी, व्यावहारिक और अंदर से बहुत दुखी और अकेली है। समाज उसे 'गुलफाम' यानी वेश्या कहता है, पर वह वास्तव में एक कलाकार और कामकाजी महिला है जो अपना पेट पालने के लिए नाचती-गाती है। वह कई पुरुषों के छल देख चुकी है, इसलिए वह जल्दी किसी पर विश्वास नहीं करती। हीरामन के भोलेपन, सम्मान और निश्छल प्रेम से वह भी उसकी ओर आकर्षित होती है, पर वह जानती है कि गांव का समाज उसे कभी बहू के रूप में स्वीकार नहीं करेगा। वह आधुनिक भारत की उस अकेली कामकाजी महिला का प्रतीक है जो घर से बाहर निकलकर काम करती है, पर समाज उसे संदेह और तिरस्कार की नजर से देखता है। वहीदा रहमान ने इस चरित्र में शालीनता, दर्द, मजबूरी और गरिमा चारों को एक साथ दिखाया है। हीराबाई का दुख यह है कि वह सबको हंसाती है, पर उसके अपने आंसू कोई नहीं देखता। उसका जाना उसकी नियति है।

निष्कर्ष: अतः हीराबाई केवल एक नर्तकी नहीं, बल्कि समाज द्वारा तिरस्कृत, पर अपनी मेहनत से जीने वाली हर स्वाभिमानि महिला का प्रतीक है। उसके माध्यम से रेणु ने स्त्री की सामाजिक पीड़ा को बहुत गहराई से उठाया है।

प्रश्न 50. 'तीसरी कसम' कहानी और फिल्म में क्या समानताएं और क्या अंतर हैं? तुलनात्मक विवेचना कीजिए।

उत्तर: 'तीसरी कसम' कहानी और फिल्म में मूल आत्मा एक है, पर माध्यम के कारण कई अंतर भी हैं। समानता यह है कि दोनों की मूल कथा, पात्र - हीरामन, हीराबाई, दोनों का अधूरा प्रेम, अंचल की पृष्ठभूमि, लोकगीत और अंत की पीड़ा एक जैसी है। बासु भट्टाचार्य ने रेणु की आत्मा को बनाए रखा है। अंतर पाँच बिंदुओं में है। पहला - कहानी में हीरामन का अंतर्मन, उसकी सोच, उसका अतीत ज्यादा है, फिल्म में वह अभिनय और गीतों से दिखाया गया है। दूसरा - कहानी का अंत बहुत सूक्ष्म और अधूरा है, फिल्म में अंत ज्यादा नाटकीय और भावनात्मक बनाया गया है। तीसरा - कहानी में भाषा ठेठ पूर्णिया की आंचलिक हिन्दी है जो हर किसी को समझ नहीं आती, फिल्म में भाषा को हिन्दुस्तानी, सरल बनाया गया ताकि व्यापक दर्शक समझ सकें। चौथा - कहानी में लोकगीत पृष्ठभूमि में हैं, फिल्म में शंकर-जयकिशन ने उन लोकगीतों को मुख्य, सुरीला और सिनेमाई बना दिया है। पांचवां - कहानी पाठक की कल्पना पर छोड़ती है, फिल्म सब कुछ दृश्य में दिखा देती है। रेणु ने स्वयं फिल्म देखने के बाद कहा था कि फिल्म कहानी से बेहतर है, जो बहुत दुर्लभ प्रशंसा है।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः कहानी और फिल्म दोनों अपनी-अपनी जगह श्रेष्ठ हैं। कहानी शब्द की शक्ति से भाव जगाती है और फिल्म दृश्य की शक्ति से। दोनों मिलकर साहित्य और सिनेमा के सफल रूपांतरण का आदर्श उदाहरण बनती हैं।

प्रश्न 51. केशवप्रसाद मिश्र के उपन्यास 'कोहबर की शर्त' का परिचय दीजिए।

उत्तर: केशवप्रसाद मिश्र का उपन्यास 'कोहबर की शर्त' 1965 में प्रकाशित हुआ था। यह एक आंचलिक, भोजपुरी पृष्ठभूमि वाला उपन्यास है जो पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के ग्रामीण जीवन, रीति-रिवाज और किशोर प्रेम पर आधारित है। कोहबर उत्तर प्रदेश में विवाह के समय दीवार पर बनाया जाने वाला चित्र है और उससे जुड़ी कई लोक-शर्तें और रस्में होती हैं। उपन्यास की कथा दो भाइयों के परिवार की है - बड़ा भाई और उसकी पत्नी और छोटा भाई चंदन और उसकी होने वाली साली गुंजा। चंदन और गुंजा दोनों किशोर हैं और उनके बीच धीरे-धीरे निश्छल, पवित्र प्रेम पनपता है। उपन्यास में गांव के खेत, बाग, मेला, होली, लोकगीत, भौजाई-देवर के हंसी-मजाक, कोहबर की रस्में सबका बहुत सुंदर और प्रामाणिक चित्रण है। यह प्रेमचंद की परंपरा का आदर्शोन्मुख यथार्थवादी उपन्यास है जिसमें अश्लीलता बिल्कुल नहीं, बल्कि भारतीय परिवार और संस्कृति का सुंदर चित्रण है। इसी उपन्यास पर 'नदिया के पार' और 'हम आपके हैं कौन' जैसी फिल्में बनी हैं।

निष्कर्ष: अतः 'कोहबर की शर्त' भारतीय ग्रामीण परिवार, किशोर प्रेम और लोक-संस्कृति का सुंदर दस्तावेज है। अपनी सादगी और सांस्कृतिक गहराई के कारण यह आज भी प्रासंगिक है और फिल्मकारों को आकर्षित करता है।

प्रश्न 52. 'नदिया के पार' - 1982 - फिल्म का परिचय दीजिए। राजश्री प्रोडक्शन की विशेषताएं क्या हैं?

उत्तर: 'नदिया के पार' फिल्म 1982 में राजश्री प्रोडक्शन द्वारा निर्मित और गोविंद मूनिस द्वारा निर्देशित की गई थी। यह केशवप्रसाद मिश्र के उपन्यास 'कोहबर की शर्त' पर आधारित है। इसमें सचिन ने चंदन और साधना सिंह ने गुंजा का किरदार निभाया था। संगीत रवींद्र जैन का था और गीत - 'कौन दिशा में लेके चला रे बटुहिया', 'जोगी जी धीरे-धीरे' आज भी बहुत लोकप्रिय हैं। यह फिल्म बहुत कम बजट में, बिना बड़े सितारों के, असली गांव की लोकेशन पर बनी थी, पर यह सुपरहिट साबित हुई। राजश्री प्रोडक्शन ताराचंद बड़जात्या की कंपनी है जिसकी चार विशेषताएं हैं - 1. पारिवारिक, संस्कारी और अश्लीलता-मुक्त फिल्में। 2. भारतीय विवाह, रिश्तों, त्योहारों का महिमामंडन। 3. ग्रामीण और मध्यमवर्गीय पृष्ठभूमि। 4. गीत-संगीत प्रधान और सुखद अंत। 'नदिया के पार' ने राजश्री की इसी पहचान को पक्का किया। इस फिल्म ने सिद्ध किया कि बिना अश्लीलता और हिंसा के भी फिल्म हिट हो सकती है। यह आज भी गांव की सादगी की प्रतीक फिल्म मानी जाती है।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः 'नदिया के पार' कम बजट में बनी बड़ी, संस्कारी और पारिवारिक फिल्म का आदर्श उदाहरण है। इसने राजश्री को 'पारिवारिक फिल्मों' का ब्रांड बना दिया और भारतीय दर्शकों को अपनी जड़ों से जोड़ा।

प्रश्न 53. 'हम आपके हैं कौन' - 1994 - फिल्म का परिचय और समीक्षा कीजिए।

उत्तर: 'हम आपके हैं कौन' - 1994 - 'नदिया के पार' का ही आधुनिक, शहरी और भव्य रीमेक है। निर्देशक सूरज बड़जात्या, निर्माता राजश्री प्रोडक्शन, मुख्य अभिनेता सलमान खान - प्रेम और माधुरी दीक्षित - निशा, संगीत रामलक्ष्मण। यह केशवप्रसाद मिश्र के 'कोहबर की शर्त' पर ही आधारित है, पर परिवेश अमीर, शहरी और NRI दर्शकों को ध्यान में रखकर बनाया गया है। कहानी वही है - दो भाइयों का परिवार, देवर-भाभी का पवित्र रिश्ता, प्रेम-निशा का प्रेम और त्याग। पर इसमें 14 गाने, भव्य विवाह, डिजाइनर कपड़े, बड़ा महल सब कुछ है। यह फिल्म भारतीय सिनेमा के इतिहास की सबसे बड़ी हिट फिल्मों में से एक है। इसने 1990 के दशक में सिनेमा हॉल में पारिवारिक दर्शकों को वापस लाया। इसकी समीक्षा में दो बातें हैं - अच्छाई यह है कि इसने भारतीय विवाह, परिवार, रीति-रिवाजों को वैश्विक स्तर पर दिखाया, गीत बहुत लोकप्रिय हुए। कमजोरी यह है कि इसमें यथार्थ से ज्यादा आदर्श, भव्यता और अमीरी है, गरीब भारत गायब है। फिर भी यह भारतीय परिवार का उत्सव फिल्म है।

निष्कर्ष: अतः 'हम आपके हैं कौन' भारतीय पारिवारिक मूल्यों, त्योहारों और रिश्तों का भव्य उत्सव है। भले ही यह यथार्थ से दूर हो, पर इसने भारतीय संस्कृति को पर्दे पर सबसे सुंदर और लोकप्रिय रूप में प्रस्तुत किया है।

प्रश्न 54. 'नदिया के पार' और 'हम आपके हैं कौन' में समानता और अंतर का विश्लेषण कीजिए।

उत्तर: 'नदिया के पार' और 'हम आपके हैं कौन' दोनों फिल्में मूलतः एक ही उपन्यास 'कोहबर की शर्त' पर आधारित हैं, इसलिए दोनों में समानताएं बहुत हैं। समानताएं - 1. मूल कथा एक

- चंदन-गुंजा / प्रेम-निशा का प्रेम, देवर-भाभी का पवित्र और मधुर रिश्ता, बड़े भाई-भाभी का त्याग। 2. दोनों में भारतीय परिवार, विवाह और त्याग का महिमामंडन। 3. दोनों राजश्री प्रोडक्शन की पारिवारिक, संस्कारी फिल्में। अंतर भी पाँच बिंदुओं में है - 1. परिवेश - 'नदिया' ग्रामीण, यथार्थवादी, सादा, भोजपुरी गंध वाली, जबकि 'हम आपके हैं कौन' शहरी, अमीर, भव्य, NRI दर्शकों के लिए। 2. बजट और प्रस्तुति - 'नदिया' कम बजट, असली लोकेशन, 'हम आपके हैं कौन' बड़ा बजट, सेट, डिजाइनर कपड़े। 3. संगीत - 'नदिया' में लोकगीत प्रधान, 'हम आपके हैं कौन' में फिल्मी, आधुनिक गीत। 4. अभिनय - 'नदिया' में नए, साधारण चेहरे, 'हम आपके हैं कौन' में सुपरस्टार। 5. युग - 'नदिया' 80 के दशक के गांव की कहानी, 'हम आपके हैं कौन' 90 के दशक के उदारीकरण के बाद के अमीर भारत की कहानी। एक नदी के इस पार का भारत है, दूसरी उस पार का।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः दोनों फिल्में एक ही आत्मा के दो रूप हैं - एक सादा और यथार्थवादी, दूसरा भव्य और आदर्शवादी। दोनों ने अपने-अपने समय में भारतीय परिवार की आत्मा को सफलतापूर्वक पर्दे पर दिखाया है।

प्रश्न 55. 'तीसरी कसम' में लोकगीतों और लोक संगीत के प्रयोग पर प्रकाश डालिए।

उत्तर: 'तीसरी कसम' में लोकगीत और लोक संगीत केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि फिल्म की आत्मा और कथा कहने का माध्यम हैं। शैलेन्द्र स्वयं लोकगीतों के बहुत बड़े प्रेमी और संग्राहक थे, इसलिए उन्होंने रेणु की कहानी में पहले से मौजूद लोकगीतों को फिल्म का प्राण बना दिया। फिल्म में चार अमर गीत हैं - 'चलत मुसाफिर मोह लियो रे पिकी', 'सजनवा बैरी भये हमार', 'पान खाए सैया हमारो', 'सजन रे झूठ मत बोलो'। ये सभी गीत भोजपुरी, पूर्वी लोक धुनों पर आधारित हैं। शंकर-जयकिशन ने इनमें लोक वाद्य - ढोलक, मंजीरा, बांसुरी का प्रयोग किया। गीतों का प्रयोग तीन तरह से हुआ है - 1. कथा को आगे बढ़ाने के लिए - हीरामन की गाड़ी के साथ गीत चलते हैं। 2. चरित्र के मनोभाव बताने के लिए - हीराबाई का दुख 'सजनवा बैरी' में है। 3. अंचल की गंध और वातावरण बनाने के लिए। हीरामन जब भी अकेला होता है, लोकगीत गुनगुनाता है। लोकगीतों के कारण फिल्म आंचलिक होते हुए भी सार्वभौमिक बन गई है। यही कारण है कि आज 60 साल बाद भी ये गीत जीवंत हैं।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः 'तीसरी कसम' में लोकगीत सजावट नहीं, बल्कि कथा के सह-नायक हैं। उन्होंने फिल्म को मिट्टी की गंध, भाव की गहराई और सांस्कृतिक प्रामाणिकता दी है, जिसके बिना यह फिल्म अधूरी है।

प्रश्न 56. राजश्री प्रोडक्शन की फिल्मों की प्रमुख विशेषताएं क्या हैं? 'नदिया के पार' और 'हम आपके हैं कौन' के संदर्भ में समझाइए।

उत्तर: राजश्री प्रोडक्शन ताराचंद बड़जात्या द्वारा 1947 में स्थापित भारत की सबसे पुरानी और सबसे पारिवारिक फिल्म कंपनी है। इसकी फिल्मों की पाँच प्रमुख विशेषताएं हैं जो 'नदिया के

पार' और 'हम आपके हैं कौन' दोनों में दिखती हैं। पहली - पारिवारिकता - इनकी फिल्मों में पूरा परिवार - दादा-दादी, माता-पिता, भाई-भाभी, देवर-साली सब होते हैं और परिवार ही नायक होता है, कोई एक हीरो नहीं। दूसरी - संस्कार और परंपरा - भारतीय विवाह, त्योहार, रीति-रिवाज, कोहबर, मेहंदी, संगीत को बहुत सुंदर और विस्तार से दिखाया जाता है। तीसरी - अक्षीलता और हिंसा से दूरी - इनकी फिल्मों में चुंबन, अक्षील कपड़े, मार-पीट, गाली-गलौज बिल्कुल नहीं होते, इसलिए पूरा परिवार एक साथ देख सकता है। चौथी - गीत-संगीत प्रधानता - हर रस्म पर एक गीत होता है, संगीत भारतीय और मधुर होता है। पांचवी - आदर्शोन्मुख यथार्थवाद - इनकी फिल्में यथार्थवादी होते हुए भी आदर्श परिवार दिखाती हैं जहाँ त्याग, प्रेम और सम्मान है। 'नदिया के पार' में ग्रामीण आदर्श और 'हम आपके हैं कौन' में शहरी आदर्श है।

निष्कर्ष: अतः राजश्री फिल्मों भारतीय संस्कृति की चलती-फिरती पाठशाला हैं। वे मनोरंजन के साथ-साथ भारतीय परिवार, विवाह और संस्कारों को अगली पीढ़ी तक पहुँचाती हैं, इसलिए वे हमेशा लोकप्रिय रहती हैं।

प्रश्न 57. 'तीसरी कसम' को राष्ट्रीय पुरस्कार क्यों मिला? उसकी कलात्मक श्रेष्ठता पर प्रकाश डालिए।

उत्तर: 'तीसरी कसम' को 1966 में राष्ट्रपति का स्वर्ण पदक - सर्वश्रेष्ठ फीचर फिल्म का राष्ट्रीय पुरस्कार मिला था, जिसके कई ठोस कलात्मक कारण हैं। पहला - साहित्य और सिनेमा का आदर्श संगम - फणीश्वरनाथ रेणु की श्रेष्ठ आंचलिक कहानी पर बनी होने के कारण इसमें साहित्यिक गहराई है। दूसरा - यथार्थवाद और आंचलिकता - इसमें पहली बार पूर्णिया अंचल, उसकी भाषा, उसके लोग, उसकी बैलगाड़ी, उसके मेले को बिना किसी कृत्रिमता के असली रूप में दिखाया गया। तीसरा - अभिनय - राजकपूर ने हीरामन के भोलेपन को और वहीदा रहमान ने हीराबाई के दर्द और गरिमा को अविस्मरणीय बना दिया। चौथा - संगीत और लोकगीत - शैलेन्द्र, शंकर-जयकिशन ने लोकगीतों को शास्त्रीयता दी। पांचवां - निर्देशन - बासु भट्टाचार्य ने बहुत संयम, संवेदना और कलात्मकता से फिल्म बनाई, कोई फॉर्मूला नहीं अपनाया। यह फिल्म मनोरंजन के साथ-साथ सोचने पर मजबूर करती है - ग्रामीण भारत की सादगी, अकेली कामकाजी महिला की पीड़ा, प्रेम की असफलता। यह समानांतर सिनेमा की पहली बड़ी व्यावसायिक कोशिश थी, इसलिए ज्युरी ने इसे सम्मान दिया।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः 'तीसरी कसम' को राष्ट्रीय पुरस्कार उसकी ईमानदारी, आंचलिकता, साहित्यिकता और कलात्मक उत्कृष्टता के कारण मिला। यह फिल्म सिद्ध करती है कि अच्छी कहानी और सच्ची संवेदना ही सच्ची कला है, जो समय के साथ और भी मूल्यवान होती जाती है।

प्रश्न 58. 'हम आपके हैं कौन' की समीक्षा कीजिए। उसकी सफलता के कारण क्या थे?

उत्तर: 'हम आपके हैं कौन' 1994 की सबसे बड़ी हिट फिल्म है, जिसने भारतीय सिनेमा में पारिवारिक फिल्मों का युग वापस लाया। कहानी - प्रेम और निशा का प्रेम, पर बीच में निशा की बहन पूजा की मृत्यु और प्रेम का त्याग। फिल्म में कोई खलनायक नहीं, कोई हिंसा नहीं, संघर्ष केवल भावनात्मक है - क्या प्रेम अपने भाई के बच्चों के लिए अपने प्रेम का त्याग करेगा? समीक्षा - अच्छाइयाँ - 1. भारतीय विवाह, परिवार, रीति-रिवाजों का भव्य और सुंदर चित्रण। 2. 14 गाने, पर हर गाना किसी रस्म से जुड़ा - मेहंदी, संगीत, जूता-चुराई। 3. माधुरी का नृत्य और सलमान की सादगी। 4. पूरा परिवार एक साथ देख सके, ऐसी साफ-सुथरी फिल्म। कमजोरियाँ - 1. अति-आदर्शवाद और अमीरी का प्रदर्शन - गरीब भारत गायब। 2. कहानी बहुत लंबी और धीमी। 3. यथार्थ से दूरी। सफलता के कारण - 1. 90 के दशक में हिंसा वाली फिल्मों से ऊबे दर्शकों को पारिवारिक फिल्म मिली। 2. NRI दर्शकों को भारतीय शादी देखने को मिली। 3. राजश्री का विश्वसनीय ब्रांड। 4. माधुरी-सलमान की जोड़ी और हिट संगीत। इसने सिनेमा हॉल को फिर से मंदिर बना दिया जहाँ पूरा परिवार जाता था।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः 'हम आपके हैं कौन' भले ही कलात्मक रूप से महान न हो, पर सांस्कृतिक और व्यावसायिक रूप से यह ऐतिहासिक फिल्म है। इसने सिद्ध किया कि भारतीय परिवार और संस्कृति में ही सबसे बड़ा मनोरंजन और पैसा है।

प्रश्न 59. साहित्यिक कृति पर फिल्म बनाना आसान है या कठिन? 'तीसरी कसम' के संदर्भ में विवेचना कीजिए।

उत्तर: साहित्यिक कृति पर फिल्म बनाना आसान नहीं, बल्कि सबसे कठिन रचनात्मक चुनौती है। आसान इसलिए लगता है कि कहानी तैयार है, पर कठिन इसलिए है कि पाठकों की अपेक्षाएं बहुत ऊँची होती हैं। 'तीसरी कसम' के संदर्भ में देखें तो कठिनाइयाँ चार थीं - 1. शब्द को दृश्य में बदलना - रेणु ने लिखा 'हीरामन का मन भीग गया', इसे पर्दे पर आंसू, क्लोज-अप, संगीत से दिखाना पड़ा। 2. भाषा - ठेठ आंचलिक भाषा को सिनेमाई हिन्दुस्तानी में बदलना ताकि सब समझ सकें, पर गंध बनी रहे। 3. पाठक की कल्पना - हर पाठक के मन में अपना हीरामन-हीराबाई है, फिल्म ने एक निश्चित छवि दी, इसलिए कई पाठक निराश भी हुए। 4. निर्माता-निर्देशक का दबाव - शैलेन्द्र ने साहित्यिक ईमानदारी बनाए रखी, इसलिए फिल्म फ्लॉप भी हुई, अगर वे मसाला डालते तो शायद हिट होती। 'तीसरी कसम' सफल इसलिए मानी जाती है क्योंकि बासु भट्टाचार्य ने रेणु की आत्मा से छेड़छाड़ नहीं की, बल्कि उसे सम्मान दिया। रेणु ने खुद कहा था - फिल्म कहानी से बेहतर है। ऐसा बहुत कम होता है। आमतौर पर लेखक फिल्म से निराश ही होता है।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः साहित्यिक कृति पर फिल्म बनाना कठिन, पर महान काम है। सफलता तभी मिलती है जब निर्देशक साहित्य की आत्मा को समझे, उसकी नकल नहीं, बल्कि सिनेमाई पुनर्सृजन करे। 'तीसरी कसम' इसी सफल पुनर्सृजन का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।

प्रश्न 60. 'साहित्य एवं सिनेमा' का समग्र महत्व क्या है? एक छात्र के रूप में इसका क्या उपयोग है?

उत्तर: इसका समग्र महत्व चार क्षेत्रों में है। पहला - शैक्षिक महत्व - यह साहित्य के छात्र को सिनेमा साक्षर बनाता है और सिनेमा के छात्र को साहित्य साक्षर बनाता है। आज साहित्य केवल किताब में नहीं, बल्कि पर्दे पर भी है, इसलिए दोनों को साथ समझना जरूरी है। दूसरा - सांस्कृतिक महत्व - यह बताता है कि कैसे प्रेमचंद, रेणु, केशवप्रसाद मिश्र की कहानियाँ पर्दे पर जिंदा हैं और भारतीय संस्कृति को बचा रही हैं। तीसरा - रोजगारपरक महत्व - यह पेपर छात्र को तीन नए रोजगार देता है - पटकथा लेखन, फिल्म समीक्षा और OTT के लिए कहानी लेखन। आज OTT पर सबसे ज्यादा मांग कहानी की है और कहानी साहित्य ही देगा। चौथा - आलोचनात्मक दृष्टि - यह छात्र को सिखाता है कि फिल्म को केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि एक कला, एक दस्तावेज के रूप में कैसे देखा और परखा जाए। मेरे जैसे छात्र के लिए यह पेपर साहित्य को नई आंखों से देखने, उसे आधुनिक तकनीक से जोड़ने और उसे जन-जन तक पहुँचाने का सबसे सशक्त माध्यम है।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः 'साहित्य एवं सिनेमा' का पेपर किताब और पर्दे के बीच का पुल है। यह साहित्य को संग्रहालय से निकालकर जीवन से जोड़ता है और छात्र को भविष्य के डिजिटल मीडिया के लिए तैयार करता है। यही इस पाठ्यक्रम की सबसे बड़ी सार्थकता है।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्नोत्तर

प्रश्न 1. साहित्य और सिनेमा का सैद्धान्तिक संबंध क्या है? साहित्य सिनेमा को और सिनेमा साहित्य को क्या देता है?

उत्तर: साहित्य और सिनेमा दोनों ही मानव सभ्यता की सबसे पुरानी इच्छा - कहानी कहने की इच्छा से पैदा हुए हैं। साहित्य शब्द से कहानी कहता है और सिनेमा दृश्य से, पर दोनों का सैद्धान्तिक आधार, लक्ष्य और आत्मा एक ही है। भारतीय काव्यशास्त्र और पाश्चात्य

समीक्षा दोनों के अनुसार दोनों कलाओं का मूल सिद्धांत अनुकरण और साधारणीकरण है। डॉ. बच्चन सिंह, डॉ. नामवर सिंह, अनुसार साहित्य और सिनेमा दोनों मानव जीवन, समाज, उसके अंतर्विरोधों, संघर्षों और सपनों की व्याख्या करते हैं।

सैद्धान्तिक रूप से दोनों में गहरी समानता है। दोनों में कथा, कथानक, चरित्र, देश-काल-वातावरण, द्वंद्व, चरमोत्कर्ष और परिणति होती है। दोनों में एक कहने वाला होता है - साहित्य में लेखक और सिनेमा में निर्देशक - और एक सुनने-देखने वाला होता है - पाठक और दर्शक। दोनों में बिंब, प्रतीक, रूपक का प्रयोग होता है। अरस्तू ने काव्य के लिए जो बातें कही थीं, वे आज सिनेमा पर भी लागू होती हैं।

पर दोनों में माध्यम का मौलिक अंतर है जो उन्हें अलग कला बनाता है। साहित्य एकाकी सृजन है। एक लेखक अकेले, अपने कमरे में, कलम और कागज से साहित्य रचता है। यह आंतरिक, मानसिक और व्यक्तिगत प्रक्रिया है। सिनेमा सामूहिक सृजन है। इसमें लेखक, निर्देशक, कैमरामैन, अभिनेता, संगीतकार, संपादक, प्रोड्यूसर - सैकड़ों लोगों की टीम लगती है। यह औद्योगिक और तकनीकी प्रक्रिया है। साहित्य में बिंब पाठक अपनी कल्पना से बनाता है, इसलिए हर पाठक का हीरामन, हर पाठक की हीराबाई अलग होती है। सिनेमा में बिंब निर्देशक बना-बनाया दर्शक को देता है, इसलिए सबका हीरामन एक - राजकपूर बन जाता है। साहित्य का प्रभाव बुद्धि और कल्पना पर होता है, धीरे-धीरे असर करता है। सिनेमा का प्रभाव आंख, कान और हृदय पर एक साथ, तुरंत होता है। साहित्य शब्द-प्रधान है, सिनेमा दृश्य-प्रधान है। साहित्य पढ़ा जाता है, सिनेमा देखा-सुना जाता है।

अब महत्वपूर्ण प्रश्न है कि दोनों एक-दूसरे को क्या देते हैं। साहित्य सिनेमा को तीन अमूल्य चीजें देता है। पहला - कथा का अक्षय और कभी न खत्म होने वाला भंडार। दुनिया की 90 प्रतिशत महान और सफल फिल्में किसी न किसी उपन्यास, कहानी, नाटक, जीवनी पर आधारित हैं। प्रेमचंद का गोदान, गबन, फणीश्वरनाथ रेणु की तीसरी कसम, केशवप्रसाद मिश्र का कोहबर की शर्त, शरतचंद्र का देवदास, भगवतीचरण वर्मा का चित्रलेखा - सब साहित्य से ही आए हैं। अगर साहित्य न होता तो सिनेमा के पास कहने को कहानी ही नहीं होती, वह केवल तकनीक और ग्लैमर का खेल बनकर रह जाता। दूसरा - भाषा और संवाद की प्रामाणिकता और मिट्टी की गंध। रेणु की ठेठ आंचलिक भाषा, प्रेमचंद की ग्रामीण अवधी, मंटो की तीखी उर्दू फिल्म में जीवंतता और विश्वसनीयता लाती है। तीसरा - वैचारिक गहराई और सामाजिक आलोचना। साहित्य जाति, वर्ग, स्त्री-शोषण, किसान-समस्या, भ्रष्टाचार जैसे गंभीर प्रश्नों को गहराई से उठाता है जो सिनेमा को केवल मनोरंजन से ऊपर उठाकर गंभीर, सोचने वाली और जिम्मेदार कला बनाता है।

वहीं सिनेमा भी साहित्य को तीन बड़ी चीजें देता है। पहला - व्यापक, विशाल और जन-जन तक दर्शक। बहुत से लोगों ने प्रेमचंद का गोदान नहीं पढ़ा, पर गोदान फिल्म देखी है। मारे गये गुलफाम कहानी को 1000 लोगों ने पढ़ा होगा, पर तीसरी कसम फिल्म को करोड़ों ने देखा है। सिनेमा साहित्य को लाइब्रेरी की अलमारी से निकालकर जन-संस्कृति बनाता है।

दूसरा - दृश्य अमरता और लोकप्रियता। सिनेमा साहित्यिक पात्रों को चेहरा, आवाज, शरीर और चाल दे देता है। तीसरा - आर्थिक आधार और नया बाजार। फिल्म बनने पर लेखक या उसके परिवार को बड़ी रॉयल्टी, कॉपीराइट मिलता है जिससे साहित्यिक सृजन को आर्थिक सहारा मिलता है। आज OTT प्लेटफॉर्म - पंचायत, गुल्लक, पाताल लोक, स्कैम 1992, मिर्जापुर जैसी साहित्यिक संवेदना वाली सीरीज ने साहित्य को नया, युवा, शहरी और वैश्विक बाजार दिया है। साहित्य अब केवल किताब में नहीं, बल्कि मोबाइल पर देखा जा रहा है। IGNOU इसे अंतर्पाठात्मकता कहता है - जहाँ दो कलाएं एक-दूसरे को काटती नहीं, बल्कि समृद्ध करती हैं।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः साहित्य और सिनेमा दो अलग माध्यम होते हुए भी एक ही लक्ष्य के दो मार्ग हैं। साहित्य सिनेमा की आत्मा है और सिनेमा साहित्य का शरीर है। एक शब्द से संवेदना जगाता है, दूसरा दृश्य से। एक की शक्ति कल्पना में है, दूसरे की शक्ति प्रत्यक्ष अनुभव में। भविष्य में OTT और डिजिटल युग में दोनों का यह अंतर्संबंध और भी गहरा होगा, क्योंकि कहानी साहित्य देगा और तकनीक सिनेमा देगा। दोनों मिलकर ही समाज का सच्चा, जीवंत और स्थायी दस्तावेज बनाते हैं और एक-दूसरे के बिना अधूरे हैं।

प्रश्न 2. सिनेमा में प्रयुक्त प्रमुख साहित्यिक विधाओं - उपन्यास, कहानी, नाटक, जीवनी, आत्मकथा का रूपांतरण कैसे होता है? समस्याओं सहित विवेचना।

उत्तर: सिनेमा अपनी कहानियों के लिए सबसे ज्यादा साहित्य पर निर्भर है। साहित्य की लगभग सभी विधाओं का सिनेमा में प्रयोग होता है, पर हर विधा के रूपांतरण की अपनी प्रकृति, संभावना और चुनौती है।

1. उपन्यास और सिनेमा: उपन्यास सिनेमा की सबसे प्रिय और सबसे ज्यादा उपयोग की जाने वाली विधा है, क्योंकि उपन्यास में एक फिल्म के लिए जरूरी सभी तत्व मौजूद होते हैं - विस्तृत कथा, चरित्रों का क्रमिक विकास, सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक पृष्ठभूमि, द्वंद्व, नायक-खलनायक। प्रेमचंद के गोदान, गबन, रेणु के मैला आँचल, श्रीलाल शुक्ल के राग दरबारी, भगवतीचरण वर्मा के चित्रलेखा पर फिल्में बनीं और सफल रहीं। उपन्यास में समय का विस्तार 300-400 पन्नों में होता है, लेखक 20 साल की कहानी कह सकता है, पर फिल्म को उसे 3 घंटे में समेटना पड़ता है। इसलिए निर्देशक को शब्दशः अनुवाद नहीं बल्कि सर्जनात्मक रूपांतरण करना पड़ता है। उसे तय करना पड़ता है कि क्या छोड़े, क्या रखे, क्या बदले। अगर मूल आत्मा बदल दी तो पाठक कहेगा - किताब ज्यादा अच्छी थी। सफल रूपांतरण वही है जो आत्मा बचाए रखे।

2. कहानी और सिनेमा: कहानी आकार में छोटी, एक ही घटना, एक ही चरित्र और एक ही द्वंद्व पर केंद्रित होती है, इसलिए वह उपन्यास की तुलना में फिल्म के लिए ज्यादा उपयुक्त मानी जाती है। फणीश्वरनाथ रेणु की मारे गये गुलफाम पर तीसरी कसम, प्रेमचंद की शतरंज के खिलाड़ी पर सत्यजित राय की फिल्म, चंद्रधर शर्मा गुलेरी की उसने कहा था पर फिल्म इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं। कहानी में जो कसावट, नाटकीय एकता, भावनात्मक तीव्रता

और चरम होता है, वह फिल्म की सीन-संरचना से बिल्कुल मिलता-जुलता है। कहानी की नाटकीय एकता ही फिल्म के सीन का आधार बनती है। कहानी में जो बात संकेत और प्रतीक में कही जाती है, फिल्म उसे दृश्य, प्रकाश और संगीत में दिखाती है। कहानी पाठक की कल्पना के लिए बहुत कुछ छोड़ देती है, फिल्म उस कल्पना को पूरा करके पर्दे पर साकार कर देती है। इसलिए कहानी का फिल्मांकन सबसे आसान और सफल होता है।

3. नाटक और सिनेमा: नाटक और सिनेमा में अभिनय, संवाद, प्रकाश, वेशभूषा, संगीत सब समान हैं। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के पांच तत्व - अभिनय, वेश, रंगमंच, संगीत, वाणी दोनों में हैं। पर नाटक मंच की कला है, सिनेमा पर्दे की। नाटक में दर्शक और अभिनेता आमने-सामने होते हैं, जीवंत संवाद होता है। सिनेमा में कैमरा बीच में होता है और अभिनय पहले रिकॉर्ड होता है। नाटक में समय और स्थान की एकता का पालन जरूरी है, एक ही मंच पर पूरी कहानी, जबकि सिनेमा में फ्लैशबैक, लोकेशन आसानी से दिखाए जा सकते हैं। साहित्यिक नाटक शब्द-प्रधान होता है, संवाद ही प्राण है, जबकि सिनेमा दृश्य-प्रधान होता है। मोहन राकेश के आषाढ़ का एक दिन पर फिल्म बनी पर मंच जैसी प्रभावशाली नहीं लगी, क्योंकि दोनों की भाषा अलग है। नाटक का फिल्मांतरण करते समय उसे खोलना पड़ता है।

4. जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण पर सिनेमा: जीवनी किसी महान व्यक्ति का प्रामाणिक जीवन है। इस पर बनी फिल्म को बायोपिक कहते हैं - गांधी, भाग मिल्खा भाग, मांझी, पान सिंह तोमर, सैम बहादुर। इसमें इतिहास और कल्पना का संतुलन सबसे कठिन है। साहित्यिक जीवनी तथ्यों, दस्तावेजों पर चलती है, सिनेमाई जीवनी तथ्यों को नाटकीय बनाती है। दर्शक सच देखना चाहता है, इसलिए शोध जरूरी है। व्यक्ति को देवता नहीं, मानवीय दिखाना चाहिए। आत्मकथा में लेखक खुद नायक है, जैसे बच्चन की आत्मकथा। उसे पर्दे पर दिखाने के लिए वॉयस-ओवर, फ्लैशबैक का सहारा लेना पड़ता है। संस्मरण स्मृति पर आधारित है - महादेवी वर्मा के संस्मरण। पाथेर पांचाली जैसी फिल्में संस्मरणात्मक हैं।

रूपांतरण की तीन सामान्य समस्याएं हैं। पहली - शब्द को दृश्य में बदलना। साहित्य में - वह बहुत उदास थी - एक पंक्ति, फिल्म में आंसू वाला क्लोज-अप, उदास संगीत, अकेली सड़क। दूसरी - समय का संकट - बड़े विस्तार को छोटे समय में समेटना। तीसरी - पाठक की कल्पना का टूटना - हर पाठक ने पात्र की अलग छवि बनाई है, फिल्म एक निश्चित छवि थोप देती है, इसलिए अक्सर कहा जाता है किताब बेहतर थी।

निष्कर्ष: अंततः हर साहित्यिक विधा सिनेमा को कुछ न कुछ देती है, पर सफल वही रूपांतरण है जो विधा की मूल आत्मा को बनाए रखे। उपन्यास गहराई और विस्तार देता है, कहानी कसावट और तीव्रता देती है, नाटक संवाद और अभिनय देता है और जीवनी प्रेरणा और इतिहास देती है। रूपांतरण अनुवाद नहीं, बल्कि सर्जनात्मक पुनर्सृजन है। जो निर्देशक साहित्य की आत्मा को समझकर उसे सिनेमाई भाषा में कहता है, वही सफल होता है।

प्रश्न 3. पटकथा क्या है? साहित्य में कथानक और सिनेमा में पटकथा में क्या संबंध है? पटकथा को साहित्य और सिनेमा के बीच का पुल क्यों कहा जाता है?

उत्तर: पटकथा फिल्म का लिखित ब्लू-प्रिंट, नक्शा, रीढ़ और आत्मा है। जैसे मकान बनाने से पहले इंजीनियर नक्शा बनाता है, बिना नक्शे के मकान नहीं बन सकता, वैसे ही फिल्म बनाने से पहले पटकथा लेखक पटकथा लिखता है। यह शब्द अंग्रेजी के Screenplay का हिन्दी अनुवाद है। साहित्य में जो कथानक, कथावस्तु या प्लॉट है, सिनेमा में वही पटकथा है, पर दोनों में रूप का अंतर है।

पटकथा में तीन अनिवार्य तत्व होते हैं। पहला - दृश्य का विवरण - दृश्य कहाँ घट रहा है, कब घट रहा है, कैसा मौसम है, कौन-कौन से पात्र हैं, उनकी वेशभूषा क्या है। दूसरा - पात्रों का कार्य-व्यापार - कौन क्या कर रहा है, कैसे चल रहा है, क्या देख रहा है। तीसरा - संवाद - पात्र क्या बोल रहे हैं, कैसे बोल रहे हैं। हॉलीवुड में पटकथा को INT - Interior, EXT - Exterior, DAY, NIGHT, CUT, CLOSE-UP जैसे तकनीकी शब्दों में लिखा जाता है। पटकथा साहित्य और सिनेमा के बीच का पुल है। यह न तो पूरी तरह साहित्य है, क्योंकि इसमें अलंकृत, काव्यात्मक, लाक्षणिक भाषा नहीं, बल्कि सीधे, सरल और तकनीकी निर्देश होते हैं। और न ही यह पूरी तरह तकनीक है, क्योंकि इसमें कहानी, भाव, चरित्र, द्वंद्व, संवेदना सब साहित्य जैसे ही होते हैं। अच्छी पटकथा में दृश्यता का गुण होता है, उसे पढ़ते ही आंखों के सामने पूरी फिल्म चलने लगती है, जैसे कहानी पढ़ते ही मन में बिंब बनते हैं।

साहित्यिक कथानक और पटकथा में संबंध और अंतर दोनों हैं। साहित्यिक कथानक लेखक की कल्पना और भाषा में बनता है, वह मनोवैज्ञानिक हो सकता है, उसमें लेखक सीधे पाठक से बात कर सकता है, अपने विचार दे सकता है, अतीत और भविष्य में स्वतंत्र रूप से आ-जा सकता है। साहित्य में लेखक लिख सकता है - उसके मन में बचपन की याद कौंध गई और वह उदास हो गया। पटकथा में इस मनोवैज्ञानिक बात को दृश्य में बदलना पड़ेगा - फ्लैशबैक सीन लिखना पड़ेगा - बच्चा खेल रहा है, फिर कट - वर्तमान में नायक उदास। साहित्य में समय लचीला है, एक पंक्ति में दस साल बीत सकते हैं। पटकथा में हर सीन का समय, लोकेशन, पात्र निश्चित करना पड़ता है - सीन 1 - गांव - सुबह। साहित्यिक कथानक एकाकी लेखक लिखता है, पटकथा अक्सर निर्देशक, संवाद लेखक के साथ बैठकर, चर्चा करके लिखी जाती है। साहित्य में कथानक का लक्ष्य पाठक की कल्पना जगाना है, पटकथा का लक्ष्य निर्देशक, कैमरामैन, अभिनेता को निर्देश देना है कि क्या करना है।

तीसरी कसम की पटकथा प्रसिद्ध साहित्यकार नर्बंदु घोष ने लिखी थी, इसलिए वह साहित्यिक संवेदना होते हुए भी पूरी तरह सिनेमाई है। उन्होंने रेणु की कहानी की आत्मा को बनाए रखते हुए उसे शॉट में तोड़ा, संवाद जोड़े, गीतों की जगह बनाई। बिना अच्छी पटकथा के अच्छी फिल्म नहीं बन सकती, चाहे कितने भी बड़े स्टार हों, कितना भी बड़ा बजट हो,

कितनी भी अच्छी तकनीक हो। सत्यजित राय, गुरुदत्त, बिमल रॉय कहते थे - पटकथा फिल्म की रीढ़ है, रीढ़ टूटी तो फिल्म टूटी।

आज OTT के युग में पटकथा का महत्व और भी बढ़ गया है, क्योंकि अब कहानी ही बिकती है, स्टार नहीं। पंचायत, गुल्लक, पाताल लोक, स्कैम जैसी सीरीज की सफलता उनकी मजबूत, साहित्यिक पटकथा के कारण ही है। अब पटकथा लेखक को साहित्यकार के बराबर सम्मान मिल रहा है।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः पटकथा साहित्य की कहानी को सिनेमा की भाषा में बदलने वाला सेतु है। यह लेखक की अमूर्त कल्पना को निर्देशक के मूर्त कैमरे तक पहुंचाती है। यह साहित्यिक भाव, विचार और संवेदना को तकनीकी निर्देश, दृश्य और संवाद में बदलती है, इसलिए इसे साहित्य और सिनेमा के बीच का पुल और फिल्म की रीढ़ दोनों कहा जाता है। बिना पुल के नदी पार नहीं होती, बिना पटकथा के फिल्म नहीं बनती।

प्रश्न 4. सिनेमा की भाषा - शॉट, सीन, सीक्वेंस और मोंटाज क्या है? साहित्य की भाषा शब्द-वाक्य-अनुच्छेद से इसकी तुलना कीजिए।

उत्तर: हर कला की अपनी भाषा होती है। साहित्य की भाषा शब्द है, तो सिनेमा की भाषा शॉट है। दोनों की रचना प्रक्रिया और व्याकरण में अद्भुत समानता है, केवल इकाई का नाम और रूप अलग है।

साहित्य की सबसे छोटी, अविभाज्य और मूल इकाई शब्द है, सिनेमा की सबसे छोटी, अविभाज्य और मूल इकाई शॉट है। शॉट कैमरे द्वारा एक बार में, बिना रुके, बिना कट के, बिना बंद हुए रिकॉर्ड किया गया दृश्यांश है। शॉट कई प्रकार के होते हैं और हर शॉट का अपना भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक अर्थ होता है। क्लोज-अप शॉट - चेहरे के सूक्ष्म भाव, आंसू, मुस्कान, आंखों की चमक दिखाने के लिए। मिड शॉट - आधे शरीर तक, दो पात्रों के संवाद के लिए। लॉन्ग शॉट - पूरा दृश्य, पात्र और उसकी पृष्ठभूमि, गांव, मेला दिखाने के लिए। एक्सट्रीम लॉन्ग शॉट - पहाड़, नदी, रेगिस्तान का विस्तार दिखाने के लिए। ओवर द शोल्डर शॉट - बातचीत में। साहित्य में विशेषण, क्रिया-विशेषण, उपमा जो काम करते हैं, सिनेमा में शॉट वही काम करते हैं। लेखक लिखता है वह बहुत दुखी थी, उसके चेहरे पर थकान थी, निर्देशक दुखी चेहरे का क्लोज-अप, झुके कंधों का मिड शॉट दिखा देता है। शॉट का चयन ही निर्देशक की शैली और संवेदना को दिखाता है। सत्यजित राय क्लोज-अप के मास्टर थे।

जैसे कई शब्द मिलकर वाक्य बनाते हैं जो एक पूरा विचार, एक पूरी बात देता है, वैसे ही कई शॉट्स मिलकर सीन बनाते हैं जो एक पूरी छोटी घटना देता है। सीन सिनेमा की दूसरी इकाई है, जैसे साहित्य में वाक्य। सीन एक ही स्थान, एक ही समय में, एक ही घटना से जुड़े कई शॉट्स का समूह है। जैसे हीरामन की गाड़ी पर हीराबाई का बैठना और बात करना - यह एक सीन है। इस सीन में 10-15 शॉट हो सकते हैं - गाड़ी का शॉट, हीरामन का शॉट, हीराबाई

का शॉट, बैलों का शॉट, पहिए का शॉट, रास्ते का शॉट। साहित्य में जैसे कई शब्द मिलकर वाक्य बनाते हैं और एक पूरा विचार देते हैं, वैसे ही कई शॉट मिलकर सीन बनाते हैं और एक पूरी छोटी घटना देते हैं। सीन फिल्म की कथा की मूल इकाई है। पटकथा में सीन को नंबर दिया जाता है - सीन-1, सीन-2।

जैसे कई वाक्य मिलकर अनुच्छेद या अध्याय बनाते हैं जो एक बड़े भाव या प्रसंग को पूरा करता है, वैसे ही कई सीन मिलकर सीक्वेंस बनाते हैं जो फिल्म के एक बड़े भाग या बड़ी घटना को पूरा करता है। सीक्वेंस सिनेमा की तीसरी और बड़ी इकाई है। उदाहरण के लिए मेला सीक्वेंस - इसमें कई सीन होंगे - मेले में जाने का सीन, नौटंकी देखने का सीन, हीरामन-हीराबाई की पहली मुलाकात का सीन, मेले से लौटने का सीन। ये सब सीन मिलकर एक मेला सीक्वेंस बनाते हैं। साहित्य में जैसे कई अनुच्छेद मिलकर एक अध्याय बनाते हैं, वैसे ही कई सीन मिलकर सीक्वेंस बनाते हैं। फिल्म में आमतौर पर 8-10 बड़े सीक्वेंस होते हैं। हर सीक्वेंस का अपना आरंभ, मध्य और अंत होता है।

मॉन्टाज सिनेमा की सबसे अपनी, सबसे विशिष्ट और सबसे शक्तिशाली भाषा है जो साहित्य में बिल्कुल नहीं है। इसका सिद्धांत रूसी निर्देशक सर्गेई आइजेंस्टीन ने दिया था। मॉन्टाज का अर्थ है दो अलग-अलग, असंबंधित शॉट्स को एक साथ जोड़कर तीसरा नया अर्थ, नया भाव, नया विचार पैदा करना। जैसे - एक शॉट में भूखा, गरीब आदमी का चेहरा और उसके तुरंत बाद दूसरे शॉट में गरम रोटी का शॉट - दर्शक के मन में भूख का तीव्र भाव पैदा होगा, जबकि दोनों शॉट अलग-अलग हैं। साहित्य में रूपक, उत्प्रेक्षा, लक्षणा अलंकार जो काम करते हैं, सिनेमा में मॉन्टाज वही काम करता है। मॉन्टाज बुद्धि और भावना दोनों को जोड़ता है, समय को छोटा करता है, विचार को दिखाता है।

समानता यह है कि दोनों की प्रक्रिया चयन, क्रम और लय की है। लेखक शब्द चुनता है, निर्देशक शॉट चुनता है। फर्क यह है कि शब्द अमूर्त और प्रतीकात्मक है, जबकि शॉट मूर्त और दृश्यात्मक है।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः साहित्य शब्दों से बनता है और सिनेमा शॉट्स से, पर दोनों की वास्तुकला एक जैसी है। शब्द से वाक्य, वाक्य से अनुच्छेद, अनुच्छेद से अध्याय और शॉट से सीन, सीन से सीक्वेंस बनता है। दोनों का लक्ष्य अर्थ-निर्माण है। मॉन्टाज सिनेमा की अपनी कविता है, अपनी विशिष्ट भाषा है जो उसे केवल रिकॉर्डिंग नहीं, बल्कि सृजन की स्वतंत्र और महान कला बनाती है।

प्रश्न 5. हिन्दी सिनेमा के उद्भव और विकास का वर्णन कीजिए। 1913 से 2026 तक के प्रमुख पड़ावों का विश्लेषण कीजिए।

उत्तर: हिन्दी सिनेमा का इतिहास केवल तकनीक का इतिहास नहीं, बल्कि भारतीय समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था और संस्कृति के बदलाव का जीवंत दस्तावेज है। इसका उद्भव और

विकास चार बड़े स्पष्ट पड़ावों में समझा जा सकता है, और हर पड़ाव ने सिनेमा को नया रूप दिया है।

पहला पड़ाव - प्रारंभिक, मूक युग और जन्म - 1896-1931: हिन्दी सिनेमा का पहला बीज 7 जुलाई 1896 को पड़ा जब बंबई के वाटसन होटल में ल्यूमियर बंधुओं ने पहली बार चलती-फिरती तस्वीरें - *Arrival of a Train* दिखाई, तब दर्शकों ने इसे जादू समझा और डरकर भाग गए। उस समय भारत में मनोरंजन के साधन पारसी थिएटर, नौटंकी, रामलीला थे। सिनेमा ने उन्हीं की अतिरंजित वेशभूषा, कहानियों और अभिनय को अपनाया। शुरुआती दौर में सिनेमा को तमाशा, मदारियों का खेल और निम्न वर्ग का मनोरंजन माना जाता था, इसे कला का दर्जा नहीं मिला था। 3 मई 1913 को दादा साहब फाल्के - धुंडिराज गोविंद फाल्के ने अपनी सारी संपत्ति, बीमा पॉलिसी, पत्नी के गहने बेचकर भारत की पहली पूर्ण भारतीय मूक फिल्म *राजा हरिश्चंद्र* बंबई के कोरोनेशन थिएटर में दिखाई। यह 40 मिनट की, 4 रील की फिल्म थी। उस समय स्त्रियाँ फिल्म में काम नहीं करती थीं, इसलिए सालुंके नामक पुरुष ने तारामती का रोल किया। फाल्के ने इसके बाद मोहिनी भस्मासुर, लंका दहन जैसी 95 फिल्में बनाईं। यह दौर प्रयोग, संघर्ष और तकनीक सीखने का दौर था। फिल्मों में कहानी समझाने के लिए बीच-बीच में शीर्षक कार्ड आते थे, पीछे हारमोनियम-तबला बजता था।

दूसरा पड़ाव - सवाक् युग और स्टूडियो युग - 1931-1947: 14 मार्च 1931 को अर्देशिर ईरानी ने बंबई के मैजेस्टिक सिनेमा में भारत की पहली बोलती फिल्म - *सवाक्* फिल्म आलम आरा प्रदर्शित की। इसमें 7 गाने थे, पहला गाना था *दे दे खुदा के नाम पर*। सवाक् आते ही सिनेमा में क्रांति आ गई। अब पात्र बोलने लगे, गाने लगे। मूक फिल्मों के कई बड़े सितारे जिनकी आवाज अच्छी नहीं थी, रातों-रात खत्म हो गए और के.एल. सहगल, देविका रानी जैसे सुरीली आवाज वाले कलाकारों का युग शुरू हुआ। इसी दौर को स्टूडियो युग कहा जाता है क्योंकि फिल्में व्यक्तिगत निर्माता नहीं बल्कि बड़े स्टूडियो बनाते थे - *बाम्बे टॉकीज* - 1934 *हिमांशु राय-देविका रानी*, प्रभात फिल्म कंपनी पुणे, न्यू थिएटर्स कलकत्ता। ये हॉलीवुड की तरह काम करते थे, अभिनेता-लेखक मासिक वेतन पर। इसी दौर में साहित्य का सिनेमा में प्रवेश हुआ। प्रेमचंद ने खुद 1934 में *मजदूर* फिल्म की पटकथा लिखी। शरतचंद्र के *देवदास* पर 1936 में पहली हिन्दी फिल्म बनी और सुपरहिट हुई। *अछूत कन्या* - 1936 में दलित समस्या पर फिल्म बनी। प्रगतिशील लेखक संघ का सिनेमा पर गहरा असर था। यह सिनेमा के पेशेवर, सामाजिक और साहित्यिक होने का युग था।

तीसरा पड़ाव - स्वर्ण युग, समानांतर सिनेमा और विद्रोह - 1948-1991: 1947 में देश आजाद हुआ तो सिनेमा ने नए भारत के सपने, गरीबी, बेरोजगारी और नेहरू युग के आदर्शवाद को दिखाया। इस दौर की फिल्में - *दो बीघा जमीन* - 1953, *मदर इंडिया* - 1957, *प्यासा* - 1957, *कागज के फूल* - 1959, *गंगा जमुना*। राजकपूर, गुरुदत्त, बिमल राय ने कला और मनोरंजन का संतुलन दिया। दिलीप कुमार, देव आनंद, मीना कुमारी, नर्गिस जैसे महान अभिनेता इसी युग की देन हैं। संगीत में नौशाद, शंकर-जयकिशन, एस.डी. बर्मन ने अमर गीत

दिए। 1960 के दशक में साहित्य पर श्रेष्ठ फिल्में बनीं - गाइड आर.के. नारायण पर, तीसरी कसम रेणु पर - 1966, साहब बीबी और गुलाम बिमल मित्र पर। 1969 के बाद मृणाल सेन की भुवन शोम से समानांतर सिनेमा शुरू हुआ। श्याम बेनेगल - अंकुर, निशांत, मंथन, गोविंद निहलानी - आक्रोश, अर्ध सत्य, बासु भट्टाचार्य ने यथार्थवादी, कम बजट, साहित्यिक फिल्में बनाईं। 1975 में इंदिरा गांधी ने आपातकाल लगाया तो गुलजार की आंधी बैन हुई, सेंसर सख्त हुआ। इस दमन के खिलाफ अमिताभ बच्चन दीवार, जंजीर, त्रिशूल में एंग्री यंग मैन बनकर उभरे। यह व्यवस्था के खिलाफ गरीब युवा का गुस्सा था। 80 के दशक में वीडियो कैसेट और टीवी से सिनेमा हॉल खाली होने लगे, सिनेमा संकट में आया। एक तरफ मसाला फिल्में - शोले, अमर अकबर एंथनी और दूसरी तरफ कला फिल्में - बाजार, अर्थ, स्पर्श।

चौथा पड़ाव - भूमंडलीकरण, मल्टीप्लेक्स और OTT युग - 1991-2026: 1991 में आर्थिक उदारीकरण शुरू हुआ तो सिनेमा भी ग्लोबल हो गया। NRI दर्शक बड़ा बाजार बन गया, इसलिए DDLJ - 1995, परदेस - 1997, कुछ कुछ होता है जैसी प्रवासी फिल्में बनीं। मल्टीप्लेक्स आए, कॉरपोरेट फंडिंग आई, सिनेमा उद्योग बन गया। 2000 के बाद दो धाराएं एक साथ चलीं - बड़ी VFX वाली फिल्में - लगान, स्वदेश, दंगल, बाहुबली, पठान और छोटी, कस्बे की यथार्थवादी फिल्में - गली बॉय, बरेली की बर्फी, आर्टिकल 15। 2016 के बाद OTT - Netflix, Amazon Prime, Hotstar, SonyLiv ने सिनेमा की परिभाषा ही बदल दी। अब फिल्म 3 घंटे की सीमा में नहीं, 8-10 एपिसोड की वेब सीरीज में उपन्यास जैसा विस्तार पा रही है - पाताल लोक, पंचायत, गुल्लक, मिर्जापुर, स्कैम 1992 सब साहित्यिक बुनावट वाली हैं। तकनीक में VFX, Dolby, AI, Virtual Production। आज सिनेमा एक साथ थिएटर और मोबाइल दोनों पर है।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः हिन्दी सिनेमा तमाशे से शुरू होकर उद्योग, फिर कला और अब वैश्विक संस्कृति और डिजिटल कंटेंट बन गया है। हर पड़ाव में उसने अपने समय के समाज, राजनीति, साहित्य और तकनीक को प्रतिबिंबित किया है। मूक से सवाक्, स्टूडियो से स्टार, मसाला से समानांतर और थिएटर से OTT तक की यह यात्रा सिद्ध करती है कि तकनीक बदलती है, पर कहानी और मानव संवेदना हमेशा जीवित रहती है। यही कारण है कि हिन्दी सिनेमा आज भी भारतीय संस्कृति का सबसे बड़ा वाहक है।

प्रश्न 6. दादा साहब फाल्के और बाम्बे टॉकीज का भारतीय सिनेमा के विकास में क्या योगदान है? समानांतर सिनेमा और मसाला फिल्म में क्या अंतर है?

उत्तर: भारतीय सिनेमा को अगर एक इमारत मानें तो दादा साहब फाल्के उसकी नींव हैं और बाम्बे टॉकीज उसकी पहली मजबूत दीवार और पाठशाला है। दोनों के बिना हिन्दी सिनेमा का इतिहास अधूरा है।

दादा साहब फाल्के का योगदान: दादा साहब फाल्के का मूल नाम धुंडिराज गोविंद फाल्के था। वे नासिक के एक चित्रकार, फोटोग्राफर, जादूगर और प्रिंटिंग प्रेस के मालिक थे। 1910 में उन्होंने बंबई में एक टेंट में विदेशी फिल्म लाइफ ऑफ क्राइस्ट देखी और उनके मन में विचार आया कि जब ईसा मसीह पर फिल्म बन सकती है तो भारतीय देवी-देवताओं - राम, कृष्ण, हरिश्चंद्र पर क्यों नहीं बन सकती। वे इस स्वप्न को लेकर लंदन गए, वहां फिल्म बनाने की तकनीक, कैमरा, डेवलपिंग, प्रिंटिंग सीखी और कैमरा खरीदकर लाए। भारत आकर उन्होंने अपनी बीमा पॉलिसी, पत्नी सरस्वतीबाई के गहने बेचकर, कर्ज लेकर 1913 में राजा हरिश्चंद्र बनाई। यह भारत की पहली पूर्ण भारतीय फिल्म थी - कहानी भारतीय, पूंजी भारतीय, तकनीशियन भारतीय, अभिनेता भारतीय। 3 मई 1913 को बंबई के कोरोनेशन थिएटर में दिखाए जाने पर यह सुपरहिट हुई। उस समय स्त्रियां फिल्म में काम नहीं करती थीं, इसलिए सालुंके नामक पुरुष ने तारामती का किरदार निभाया। फाल्के ने 1913 से 1937 तक लगभग 95 फीचर फिल्मों और 26 लघु फिल्मों बनाई - मोहिनी भस्मासुर, सत्यवान सावित्री, लंका दहन। लंका दहन में उन्होंने पहली बार ट्रिप्ले फोटोग्राफी का प्रयोग किया। उन्होंने सिनेमा को केवल मनोरंजन नहीं बल्कि स्वदेशी आंदोलन का हिस्सा बनाया। उन्होंने सिद्ध किया कि भारतीय भी तकनीक में पीछे नहीं हैं। अगर वे न होते तो भारतीय सिनेमा कई साल तक विदेशियों के हाथ में रहता। उनके सम्मान में 1969 से भारत सरकार भारतीय सिनेमा का सर्वोच्च सम्मान दादा साहब फाल्के पुरस्कार देती है। इसलिए उन्हें भारतीय सिनेमा का पितामह, जनक कहा जाता है।

बाम्बे टॉकीज का योगदान: बाम्बे टॉकीज की स्थापना 1934 में हिमांशु राय और उनकी अभिनेत्री पत्नी देविका रानी ने जर्मनी के UFA स्टूडियो के सहयोग से की थी। यह भारत का पहला आधुनिक, पेशेवर, वैज्ञानिक और संगठित फिल्म स्टूडियो था। इसका योगदान चार क्षेत्रों में ऐतिहासिक है। पहला - तकनीकी क्रांति - इसने भारत में पहली बार आधुनिक ट्रॉली, क्रेन, लाइटिंग, साउंड रिकॉर्डिंग, लैब, एडिटिंग टेबल लाई। जर्मन तकनीशियन फ्रांज ओस्टेन ने यहां निर्देशन सिखाया। दूसरा - प्रतिभा निर्माण की पाठशाला - इसने अशोक कुमार, दिलीप कुमार, राजकपूर, देवानंद, कामिनी कौशल, मधुबाला जैसे महान अभिनेताओं, लेखकों, संगीतकारों और तकनीशियनों को प्रशिक्षित किया। अशोक कुमार तो लैब असिस्टेंट थे, फिर हीरो बन गए। तीसरा - सामाजिक और साहित्यिक फिल्मों - अछूत कन्या - 1936 में पहली बार दलित समस्या पर फिल्म बनाकर सामाजिक सुधार का काम किया। कर्मा - 1933 भारत की पहली अंग्रेजी-हिन्दी द्विभाषी फिल्म थी। चौथा - पेशेवर व्यवस्था और अनुशासन - यहां कलाकार मासिक वेतन पर काम करते थे, समय पर शूटिंग, अनुशासन, स्क्रिप्ट पर काम होता था। इसने सिनेमा को पारसी थिएटर के तमाशे और जुगाड़ से निकालकर एक अनुशासित उद्योग और कला बनाया।

समानांतर सिनेमा और मसाला फिल्म में अंतर: 70 के दशक में हिन्दी सिनेमा दो स्पष्ट धाराओं में बंट गया। समानांतर सिनेमा जिसे नया सिनेमा, कला फिल्म, आर्ट फिल्म भी

कहते हैं, 1969 में मृणाल सेन की भुवन शोम से शुरू हुआ। इसके प्रमुख निर्देशक श्याम बेनेगल, गोविंद निहलानी, बासु भट्टाचार्य, मणि कौल, सत्यजित राय हैं। इसकी विशेषताएं हैं - 1. कम बजट, असली लोकेशन, नए और गैर-स्टार चेहरे। 2. साहित्यिक कथा - प्रेमचंद, रेणु, महाश्वेता देवी की कहानियों पर। 3. ग्रामीण, निम्न-मध्यम वर्ग, हाशिये के लोगों का यथार्थ। 4. मनोरंजन से ज्यादा सामाजिक संदेश और सोच। 5. पुरस्कारों के लिए, बाजार के लिए नहीं। प्रमुख फिल्में - तीसरी कसम, अंकुर, निशांत, मंथन, आक्रोश, अर्ध सत्य, पार, भूमिका। यह सिनेमा हिट नहीं था पर इसने सिनेमा को अंतरराष्ट्रीय सम्मान दिलाया।

दूसरी धारा मसाला फिल्म है, यह शब्द प्रसिद्ध निर्माता-निर्देशक मनमोहन देसाई ने गढ़ा था। मसाला फिल्म का अर्थ है ऐसी फिल्म जिसमें दर्शक के लिए हर तरह का मसाला हो - एक्शन, कॉमेडी, रोमांस, ड्रामा, गीत, नृत्य, पारिवारिक भावना, बदला सब एक साथ। जैसे अमर अकबर एंथनी, नसीब, कुली, शोले, दीवार। यह पूरी तरह मनोरंजन, पैसा कमाने के लिए बनाई जाती है। इसकी विशेषताएं - 1. फॉर्मूला कहानी - बिछड़ा हुआ भाई, गरीब नायक, अमीर खलनायक। 2. सितारा प्रधान - बड़े स्टार ही फिल्म बेचते हैं। 3. अतिरंजित अभिनय और संवाद। 4. 5-6 हिट गाने। 5. सुखद अंत। यह साहित्य से सबसे दूर है, पर यही हिन्दी सिनेमा की सबसे बड़ी पहचान और आर्थिक ताकत बनी।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः फाल्के ने भारतीय सिनेमा को जन्म दिया, उसे आत्मनिर्भर बनाया और बाम्बे टॉकीज ने उसे चलना, बोलना, पेशेवर होना सिखाया। एक ने नींव रखी, दूसरे ने इमारत बनाई। समानांतर सिनेमा सिनेमा की अंतरात्मा, सोच और कला है, जबकि मसाला फिल्म उसका लोकप्रिय चेहरा, शरीर और बाजार है। एक समाज का सच दिखाती है, दूसरी समाज का सपना दिखाती है। दोनों मिलकर ही हिन्दी सिनेमा को पूर्ण, लोकप्रिय और महान बनाते हैं और दोनों की अपनी-अपनी जरूरत है।

प्रश्न 7. फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी 'मारे गये गुलफाम' पर बनी फिल्म 'तीसरी कसम' की विस्तृत समीक्षा कीजिए। हीरामन और हीराबाई के चरित्र के माध्यम से ग्रामीण भारत और स्त्री की नियति पर प्रकाश डालिए।

उत्तर: तीसरी कसम 1966 में प्रदर्शित हिन्दी सिनेमा की उन गिनी-चुनी फिल्मों में से है जहाँ साहित्य और सिनेमा का आदर्श, ईमानदार और कलात्मक संगम हुआ है। यह फणीश्वरनाथ रेणु की 1956 में ठुमरी कहानी संग्रह में प्रकाशित प्रसिद्ध आंचलिक कहानी मारे गये गुलफाम

उर्फ तीसरी कसम पर आधारित है। रेणु आंचलिक कथा के जनक माने जाते हैं और यह कहानी हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ प्रेम कहानियों में से एक है।

फिल्म के निर्माण की कहानी भी फिल्म जैसी ही है। इसके निर्माता प्रसिद्ध गीतकार शैलेन्द्र थे, जिन्होंने राजकपूर की फिल्मों के लिए अमर गीत लिखे थे। उन्होंने अपनी सारी जीवन भर की पूंजी, मकान तक बेचकर इस फिल्म को बनाया क्योंकि वे रेणु की कहानी से बहुत प्रभावित थे। निर्देशक बासु भट्टाचार्य थे, जो बाद में समानांतर सिनेमा के बड़े निर्देशक बने। पटकथा प्रसिद्ध साहित्यकार नबेंदु घोष ने लिखी थी, इसलिए फिल्म में साहित्यिक गहराई और संवेदना है। मुख्य भूमिका में राजकपूर ने हीरामन और वहीदा रहमान ने हीराबाई का अविस्मरणीय किरदार निभाया। राजकपूर ने इस फिल्म के लिए कोई मेहनताना नहीं लिया था, केवल दोस्ती के लिए काम किया। संगीत शंकर-जयकिशन का था और गीत शैलेन्द्र ने ही लिखे थे - चलत मुसाफिर मोह लियो रे, सजनवा बैरी भये हमार, पान खाए सैंया हमारो, सजन रे झूठ मत बोलो आज भी अमर हैं। छायांकन सुब्रत मित्रा का यथार्थवादी था। यह फिल्म बॉक्स ऑफिस पर बुरी तरह फ्लॉप रही थी क्योंकि दर्शकों को राजकपूर से आवारा, श्री 420 जैसी शो मैन वाली रंगीन फिल्म की उम्मीद थी, पर यह सादी, ग्रामीण, आंचलिक फिल्म थी। पर कला समीक्षकों ने इसे उत्कृष्ट माना और इसे 1966 का राष्ट्रपति स्वर्ण पदक - सर्वश्रेष्ठ फीचर फिल्म का राष्ट्रीय पुरस्कार मिला।

कहानी का सार - हीरामन नाम का एक 40-42 साल का भोला-भाला बैलगाड़ी वाला, जो पूर्णिया अंचल में सामान ढोता है। वह अब तक जीवन में दो कसमें खा चुका है - चोरी की लकड़ी न लादने की और बांस न लादने की, क्योंकि उनसे उसे नुकसान और बेइज्जती हुई थी। तीसरी बार वह मेला से नौटंकी कंपनी की नर्तकी हीराबाई को अपनी गाड़ी में लादता है। हीराबाई सुंदर, अनुभवी, व्यावहारिक, पर समाज द्वारा गुलफाम - वेश्या कही जाने वाली नर्तकी है। रास्ते में 2-3 दिन के सफर में दोनों में आकर्षण, लगाव, सम्मान और अधूरा प्रेम पनपता है। हीरामन उसे वेश्या नहीं बल्कि देवी, परम सुंदरी समझता है, उसे सम्मान देता है, जो समाज उसे कभी नहीं देता। हीराबाई भी उसके भोलेपन, निश्छलता और सम्मान से उसकी ओर आकर्षित होती है, पर वह अनुभवी है और जानती है कि गांव का समाज उसे कभी बहू के रूप में स्वीकार नहीं करेगा - एक गाड़ीवाले और एक नर्तकी का मेल असंभव है। अंत में हीराबाई दूसरी कंपनी के साथ चली जाती है और हीरामन अकेला, टूटा हुआ रह जाता है और तीसरी कसम खाता है कि अब कभी नौटंकी वाली को गाड़ी में नहीं बैठाएगा।

हीरामन का चरित्र ग्रामीण भारत का सच्चा प्रतिनिधि है। वह अनपढ़, भोला, निश्छल, संवेदनशील, भावुक है। उसने जीवन में बहुत दुख देखे हैं पर मन अभी भी बच्चे जैसा साफ है। वह शहर की चालाकी, छल-कपट नहीं जानता, रिश्तों को दिल से निभाता है। उसकी बैलगाड़ी, उसके दो बैल, उसकी टोपी, उसके लोकगीत - भारतीय गांव की आत्मा हैं। राजकपूर ने अपनी आंखों, मुस्कान, चाल से इसे जीवंत किया है। उसका टूटा प्रेम ग्रामीण मन की कोमलता और आधुनिक समाज की कठोरता के बीच के द्वंद्व को दिखाता है।

हीराबाई का चरित्र आधुनिक भारत की अकेली, स्वाभिमानी, कामकाजी महिला का प्रतीक है। वह नौटंकी में नाच-गाकर अपना पेट पालती है, कलाकार है, पर समाज उसे वेश्या कहता है। वह कई पुरुषों के छल देख चुकी है, इसलिए व्यावहारिक और कठोर दिखती है, पर अंदर से बहुत अकेली, दुखी और सम्मान की भूखी है। वह जानती है कि उसका पेशा ही उसकी सबसे बड़ी बाधा है। वहीदा रहमान ने इस चरित्र में शालीनता, दर्द, मजबूरी और गरिमा चारों को एक साथ दिखाया है। हीराबाई का दुख यह है कि वह सबको हंसाती है, पर उसके अपने आंसू कोई नहीं देखता। उसके माध्यम से रेणु ने स्त्री की सामाजिक नियति - कामकाजी महिला को समाज संदेह से देखता है - को बहुत गहराई से उठाया है।

फिल्म में लोकगीतों का प्रयोग आत्मा की तरह है। शैलेन्द्र खुद लोकगीतों के संग्राहक थे। चलत मुसाफिर, सजनवा बैरी जैसे गीत कथा को आगे बढ़ाते हैं, चरित्र के मनोभाव बताते हैं और पूर्णिया अंचल की मिट्टी की गंध देते हैं।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः तीसरी कसम केवल प्रेम कहानी नहीं, बल्कि ग्रामीण भारत की सादगी, ईमानदारी और आधुनिक समाज में अकेली कामकाजी महिला की पीड़ा, तिरस्कार और संघर्ष की मार्मिक गाथा है। यह सिद्ध करती है कि सच्चा प्रेम हमेशा सामाजिक बंधनों के कारण पूरा नहीं होता। हीरामन भारतीय गांव के टूटते हुए भोलेपन का प्रतीक है और हीराबाई समाज में स्त्री की कठिन नियति का प्रतीक है। साहित्यिक ईमानदारी, यथार्थवादी प्रस्तुति और कलात्मक उत्कृष्टता के कारण यह फिल्म 60 साल बाद भी भारतीय सिनेमा की कालजयी, महानतम फिल्मों में से एक मानी जाती है।

प्रश्न 8. केशवप्रसाद मिश्र के उपन्यास 'कोहबर की शर्त' पर बनी दो फिल्मों - 'नदिया के पार' - 1982 और 'हम आपके हैं कौन' - 1994 की तुलनात्मक समीक्षा कीजिए। राजश्री फिल्मों की विशेषताएं क्या हैं?

उत्तर: केशव प्रसाद मिश्र का उपन्यास कोहबर की शर्त 1965 में प्रकाशित एक आंचलिक, भोजपुरी पृष्ठभूमि वाला उपन्यास है जो पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के ग्रामीण जीवन, रीति-रिवाज, विवाह-परंपरा और किशोर प्रेम पर आधारित है। कोहबर उत्तर भारत में विवाह के समय दीवार पर बनाया जाने वाला चित्र है और उससे जुड़ी कई लोक-शर्तें, रस्में, हंसी-मजाक होते हैं। उपन्यास की कथा दो भाइयों के परिवार की है - बड़ा भाई ओमकार और उसकी पत्नी गुंजा

की बड़ी बहन और छोटा भाई चंदन और उसकी होने वाली साली गुंजा। चंदन और गुंजा दोनों किशोर हैं और उनके बीच धीरे-धीरे निश्छल, पवित्र, शरारत भरा प्रेम पनपता है। उपन्यास में गांव के खेत, बाग, मेला, होली, लोकगीत, भौजाई-देवर के हंसी-मजाक, कोहबर की रस्में, जौनपुर की बोली सबका बहुत सुंदर, प्रामाणिक और संस्कारी चित्रण है। यह प्रेमचंद की परंपरा का आदर्शोन्मुख यथार्थवादी उपन्यास है जिसमें अश्लीलता बिल्कुल नहीं, बल्कि भारतीय परिवार और संस्कृति का सुंदर चित्रण है। इसी उपन्यास पर दो ऐतिहासिक फिल्में बनीं।

नदिया के पार - 1982: यह राजश्री प्रोडक्शन द्वारा निर्मित और गोविंद मूनिस द्वारा निर्देशित फिल्म है। इसमें सचिन ने चंदन और साधना सिंह ने गुंजा का किरदार निभाया था, जो नए चेहरे थे। संगीत रवींद्र जैन का था और गीत कौन दिशा में लेके चला रे बटुहिया, जोगी जी धीरे-धीरे, गुंजा रे चंदन, जोगी जी आज भी बहुत लोकप्रिय हैं और लोकगीतों पर आधारित हैं। यह फिल्म बहुत कम बजट में, बिना बड़े सितारों के, जौनपुर के असली गांव, खेत, नदी की लोकेशन पर बनी थी, पर यह सुपरहिट साबित हुई और गांव-गांव में देखी गई। यह राजश्री की पहचान बन गई।

हम आपके हैं कौन - 1994: यह नदिया के पार का ही आधुनिक, शहरी, भव्य और NRI दर्शकों के लिए बनाया गया रीमेक है। निर्देशक सूरज बड़जात्या, निर्माता राजश्री प्रोडक्शन, मुख्य अभिनेता सलमान खान - प्रेम और माधुरी दीक्षित - निशा, संगीत रामलक्ष्मण - लक्ष्मण ही रवींद्र जैन के भाई हैं। कहानी वही है - दो भाइयों का परिवार, देवर-भाभी का पवित्र और मधुर रिश्ता, प्रेम-निशा का प्रेम और त्याग, बड़े भाई-भाभी का आदर्श। पर परिवेश अमीर, शहरी, महल जैसा घर, डिजाइनर कपड़े, बड़ा बजट। इसमें 14 गाने हैं, हर रस्म पर गाना - दिदी तेरा देवर दीवाना, जूते दो पैसे लो, मायके से, वाह वाह राम जी। यह फिल्म भारतीय सिनेमा के इतिहास की सबसे बड़ी हिट फिल्मों में से एक है, जिसने 1990 के दशक में हिंसा वाली फिल्मों से ऊबे पारिवारिक दर्शकों को सिनेमा हॉल में वापस लाया और विदेशों में भी भारतीय शादी को दिखाया।

तुलनात्मक समीक्षा - समानताएं: दोनों की मूल आत्मा और स्रोत एक ही उपन्यास कोहबर की शर्त है, इसलिए समानताएं बहुत हैं। 1. मूल कथा एक - चंदन-गुंजा / प्रेम-निशा का किशोर प्रेम, देवर-भाभी का पवित्र, मधुर, हंसी-मजाक वाला रिश्ता, बड़े भाई-भाभी का त्याग और आदर्श। 2. दोनों में भारतीय परिवार, विवाह, त्याग, रीति-रिवाजों का महिमामंडन। 3. दोनों राजश्री प्रोडक्शन की पारिवारिक, संस्कारी, साफ-सुथरी, अश्लीलता-मुक्त फिल्में। 4. दोनों में गीत-संगीत प्रधान और सुखद अंत।

अंतर: अंतर पांच बिंदुओं में है। 1. परिवेश और यथार्थ - नदिया के पार ग्रामीण, यथार्थवादी, सादा, भोजपुरी गंध वाली, जौनपुर के खेतों वाली है, जबकि हम आपके हैं कौन शहरी, अमीर, भव्य, महल जैसा घर, NRI दर्शकों के लिए। 2. बजट और प्रस्तुति - नदिया कम बजट, असली लोकेशन, साधारण कपड़े, जबकि हम आपके हैं कौन बड़ा बजट, सेट, डिजाइनर कपड़े, भव्य विवाह। 3. संगीत - नदिया में लोकगीत प्रधान, मिट्टी की गंध, जबकि

हम आपके हैं कौन में फिल्मी, आधुनिक, पॉपुलर गीत। 4. अभिनय और सितारे - नदिया में नए, साधारण, गांव जैसे चेहरे, हम आपके हैं कौन में सुपरस्टार - सलमान-माधुरी। 5. युग और भारत - नदिया 80 के दशक के सादे, मध्यमवर्गीय भारत की कहानी है, हम आपके हैं कौन 91 के उदारीकरण के बाद के अमीर, उपभोक्तावादी भारत की कहानी है। एक नदी के इस पार का सादा भारत है, दूसरी उस पार का चमकदार भारत।

राजश्री फिल्मों की विशेषताएं: राजश्री प्रोडक्शन ताराचंद बड़जात्या द्वारा 1947 में स्थापित भारत की सबसे पुरानी और सबसे पारिवारिक फिल्म कंपनी है। इसकी पांच प्रमुख विशेषताएं हैं जो दोनों फिल्मों में दिखती हैं। पहली - पारिवारिकता - इनकी फिल्मों में पूरा परिवार - दादा-दादी, माता-पिता, भाई-भाभी, देवर-साली सब होते हैं और परिवार ही नायक होता है, कोई एक हीरो नहीं। दूसरी - संस्कार और परंपरा - भारतीय विवाह, त्योहार, रीति-रिवाज, कोहबर, मेहंदी, संगीत, जूता-चुराई को बहुत सुंदर और विस्तार से दिखाया जाता है। तीसरी - अश्लीलता और हिंसा से दूरी - इनकी फिल्मों में चुंबन, अश्लील कपड़े, मार-पीट, गाली-गलौज बिल्कुल नहीं होते, इसलिए पूरा परिवार - बच्चे से बूढ़े तक एक साथ बैठकर देख सकता है। चौथी - गीत-संगीत प्रधानता - हर रस्म पर एक गीत होता है, संगीत भारतीय, मधुर और परिवार के साथ गाने योग्य होता है। पांचवी - आदर्शोन्मुख यथार्थवाद - इनकी फिल्में यथार्थवादी होते हुए भी आदर्श परिवार दिखाती हैं जहां त्याग, प्रेम, सम्मान है, लड़ाई नहीं।

निष्कर्ष: निष्कर्षतः नदिया के पार और हम आपके हैं कौन एक ही आत्मा के दो रूप हैं - एक सादा और यथार्थवादी, दूसरा भव्य और आदर्शवादी। एक नदी के इस पार के सादे, मध्यमवर्गीय भारत का प्रतिनिधित्व करती है और दूसरी उस पार के अमीर, ग्लोबल भारत का। दोनों ने अपने-अपने समय में भारतीय परिवार, त्याग और संस्कृति की आत्मा को सफलतापूर्वक पर्दे पर दिखाया है और सिद्ध किया है कि बिना अश्लीलता और हिंसा के भी फिल्म सुपरहिट हो सकती है। यही कारण है कि राजश्री आज भी पारिवारिक फिल्मों का सबसे विश्वसनीय ब्रांड है।

नोट-यह अध्ययन सामाग्री IGNOU नोट्स, डॉ. नामवर सिंह, डॉ. बच्चन सिंह तथा JNU के सिनेमा अध्ययन सामाग्री के नोट्स से तैयार किया गया है